2

Extra ... clean :!

ओ३म्

अथ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥१॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

तैत्तिरीय–आरण्यके नवमप्रपाठके प्रथमानुवाके ॥

**ब्रह्मानन्तमनादि विश्वकृदजं सत्यं परं शाश्वतं, विद्या यस्य सनातनी निगमभृद् वैधर्म्यविध्वंसिनी।
वेदाख्या विमला हिता हि जगते नृभ्यः सुभाग्यप्रदा, तन्नत्वा निगमार्थभाष्यमतिना भाष्यं तु तन्तन्यते॥१॥
कालरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे भाद्रमासे सिते दले । प्रतिपद्यादित्यवारे भाष्यारम्भः कृतो मया ॥२॥
दयाया आनन्दो विलसति परः स्वात्मविदितः, सरस्वत्यस्याग्रे निवसति हिता हीशशरणा ।
इयं ख्यातिर्यस्य प्रततसुगुणा वेदमननाऽस्त्यनेनेदं भाष्यं रचितमिति बोद्धव्यमनघाः ॥३॥
मनुष्येभ्यो हितायैव सत्यार्थं सत्यमानतः । ईश्वरानुग्रहेणेदं वेदभाष्यं विधीयते ॥४॥
संस्कृतप्राकृताभ्यां यद्भाषाभ्यामन्वितं शुभम् । मन्त्रार्थवर्णनं चात्र क्रियते कामधुङ् मया ॥५॥
आर्य्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीतिः सनातनी । तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विधास्यन्ते तु नान्यथा ॥६॥
येनाधुनिकभाष्यैर्ये टीकाभिर्वेददूषकाः । दोषाः सर्वे विनश्येयुरन्यथार्थविवर्णनाः ॥७॥
सत्यार्थश्च प्रकाश्येत वेदानां यः सनातनः । ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयं सुसिध्यताम् ॥८॥**

भाषार्थ–(सह नाव०) हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! आपकी कृपा, रक्षा और सहाय से हम लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें । (सह नौ भुनक्तु०) और हम सब लोग परमप्रीति से मिल के सब से उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्तिराज्य आदि सामग्री से आनन्द को आप के अनुग्रह से सदा भोगें । (सह वीर्यं०) हे कृपानिधे ! आपके सहाय से हम लोग एक दूसरे के सामर्थ्य को पुरुषार्थ से सदा बढ़ाते रहें । (तेजस्वि०) और हे प्रकाशमय सब विद्या के देने वाले परमेश्वर ! आपके सामर्थ्य से ही हम लोगों का पढ़ा और पढ़ाया सब संसार में प्रकाश को प्राप्त हो और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहे, (मा विद्विषा०) हे प्रीति के उत्पादक ! आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग परस्पर विरोध कभी न करें किन्तु एक दूसरे के मित्र होके सदा वर्तें ।

(ओं शान्तिः०) हे भगवन् ! आप की करुणा से हम लोगों के तीन ताप–एक 'आध्यात्मिक' जो कि ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होती है, दूसरा 'आधिभौतिक' जो दूसरे प्राणियों से होता है और तीसरा 'आधिदैविक' जो कि मन और इन्द्रियों के विकार, अशुद्धि और चञ्चलता से क्लेश होता है, इन तीनों तापों को आप शान्त अर्थात् निवारण कर दीजिये, जिस से हम लोग सुख से इस वेदभाष्य को यथावत् बना के सब मनुष्यों का उपकार करें । यही आप से चाहते हैं सो कृपा करके हम लोगों को सब दिनों के लिये सहाय कीजिये ॥१॥

(ब्रह्मानन्त०) जो ब्रह्म अनन्त आदि विशेषणों से युक्त है, जिसकी वेद विद्या सनातन है, उस को अत्यन्त प्रेम भक्ति से मैं नमस्कार करके इस वेदभाष्य के बनाने का आरम्भ करता हूं ।।१।।

(कालरा०) विक्रम के संवत् १९३३ भाद्रमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, रविवार के दिन इस वेदभाष्य का आरम्भ मैंने किया है ।।२।।

(दयाया०) सब सज्जन लोगों को यह बात विदित हो कि जिन का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है उन्होंने इस वेदभाष्य को रचा है ।।३।।

(मनुष्ये०) ईश्वर की कृपा के सहाय से सब मनुष्यों के हित के लिए इस वेदभाष्य का विधान मैं करता हूं ।।४।।

(संस्कृतप्रा०) सो यह वेदभाष्य दो भाषाओं में किया जाता है—एक संस्कृत और दूसरी प्राकृत। इन दोनों भाषाओं में वेदमन्त्रों के अर्थ का वर्णन मैं करता हूं ।।५।।

(आर्य्याणां०) इस वेदभाष्य में अप्रमाण लेख कुछ भी नहीं किया जाता है, किन्तु जो ब्रह्मा से लेके व्यास पर्यन्त मुनि और ऋषि हुए हैं उन की जो व्याख्यारीति है उस से युक्त ही यह वेदभाष्य बनाया जायगा ।।६।।

(येनाधु०) यह भाष्य ऐसा होगा कि जिस से वेदार्थ से विरुद्ध अब के बने भाष्य और टीकाओं से वेदों में भ्रम से जो मिथ्या दोषों के आरोप हुए हैं वे सब निवृत्त हो जायेंगे ।।७।।

(सत्यार्थश्च०) और इस वेदभाष्य से वेदों का जो सत्य अर्थ है सो संसार में प्रसिद्ध हो, कि वेदों के सनातन अर्थ को सब लोग यथावत् जान लें, इसलिए यह प्रयत्न मैं करता हूं, सो परमेश्वर के सहाय से यह काम अच्छे प्रकार सिद्ध हो, यही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है ।।८।।

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ।।१।।

यजुर्वेद । अध्याये ३० । मन्त्रः ३।।

भाष्यम्—हे सच्चिदानन्तस्वरूप ! हे परमकारुणिक ! हे अनन्तविद्य ! हे विद्या-विज्ञानप्रद ! (देव ! हे सूर्यादिसर्वजगद्विद्याप्रकाशक ! हे सर्वानन्दप्रद ! (सवितः) हे सकलजगदुत्पादक ! (नः) अस्माकम् (विश्वानि) सर्वाणि (दुरितानि) दुःखानि सर्वान् दुष्टगुणांश्च (परासुव) दूरे गमय । (यद्भद्रं) यत्कल्याणं सर्वदुःखरहितं सत्यविद्याप्राप्त्याऽ-भ्युदयनिःश्रेयससुखकरं भद्रमस्ति (तन्नः) अस्मभ्यं (आसुव) आ. समन्तादुत्पादय कृपया प्रापय ।

अस्मिन् वेदभाष्यकरणानुष्ठाने ये दुष्टा विघ्नास्तान् प्राप्तेः पूर्वमेव परासुव दूरं गमय, यच्च शरीरबुद्धिसहायकौशलसत्यविद्याप्रकाशादिभद्रमस्ति तत्स्वकृपाकटाक्षेण हे परब्रह्मन्! नोऽस्मभ्यं प्रापय, भवत्कृपाकटाक्षसुसहायप्राप्त्या सत्यविद्योज्ज्वलं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं भवद्रचितानां वेदानां यथार्थं भाष्यं वयं विदधीमहि । तदिदं सर्वमनुष्योपकाराय भवत्कृपया भवेत् । अस्मिन् वेदभाष्ये सर्वेषां मनुष्याणां परमश्रद्धयाऽत्यन्ता प्रीतिर्यथा स्यात् तथैव भवता कार्यमित्योम् ।।

भाषार्थ—हे सत्यस्वरूप ! हे विज्ञानमय ! हे सदानन्दस्वरूप ! हे अनन्तसामर्थ्ययुक्त ! हे परमकृपालो ! हे अनन्तविद्यामय ! हे विज्ञानविद्याप्रद ! (देव) हे परमेश्वर ! आप सूर्यादि सब जगत्

का और विद्या का प्रकाश करने वाले हैं तथा सब आनन्द को देने वाले हैं, (सवितः) हे सर्वजगदुत्पादक सर्वशक्तिमन् ! आप सब जगत् को उत्पन्न करने वाले हो, (नः) हमारे (विश्वानि) सब जो (दुरितानि) दुःख हैं उनको और हमारे सब दुष्ट गुणों को कृपा से आप (परासुव) दूर कर दीजिये, अर्थात् हम से उन को और हम को उन से सदा दूर रखिये, (यद्भद्रं) और जो सब दुःखों से रहित कल्याण है, जो कि सब सुखों से युक्त भोग है, उस को हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कीजिये । **सो सुख दो प्रकार का है–एक जो सत्य विद्या की प्राप्ति से अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्ति राज्य, इष्ट मित्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्यन्त उत्तम सुख का होना, और दूसरा जो कि निःश्रेयस सुख है कि जिस को मोक्ष कहते हैं और जिस में ये दोनों सुख हैं उसी को भद्र कहते हैं** (तन्न आ सुव) उस सुख को आप हमारे लिये सब प्रकार से प्राप्त करिये ।

और आपकी कृपा के सहाय से सब विघ्न हम से दूर रहें कि जिससे इस वेदभाष्य के करने का हमारा अनुष्ठान सुख से पूरा होय । इस अनुष्ठान में हमारे शरीर में आरोग्य, बुद्धि, सज्जनों का सहाय, चतुरता और सत्यविद्या का प्रकाश सदा बढ़ता रहे । इस भद्रस्वरूप सुख को आप अपनी सामर्थ्य से ही हम को दीजिए, जिस कृपा के सामर्थ्य से हम लोग सत्य विद्या से युक्त जो आपके बनाये वेद हैं उनके यथार्थ अर्थ से युक्त भाष्य को सुख से विधान करें । सो यह वेदभाष्य आपकी कृपा से सम्पूर्ण हो के सब मनुष्यों का सदा उपकार करने वाला हो और, आप अन्तर्यामी की प्रेरणा से सब मनुष्यों का इस वेदभाष्य में श्रद्धा सहित अत्यन्त उत्साह हो, जिससे वेदभाष्य करने में जो हम लोगों का प्रयत्न है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त हो । इसी प्रकार से आप हमारे और सब जगत् के ऊपर कृपादृष्टि करते रहें, जिससे इस बड़े सत्य काम को हम लोग सहज से सिद्ध करें ॥१॥

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति । स्वऽर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१॥
यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् । दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥२॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः । अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३॥
यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् । दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥४॥

अथर्ववेदसंहितायाम् । काण्डे १० । प्रपाठके २३ । अनुवाके ४। मं० १।३२।३३।३४॥

भाष्यम्–(यो भूतं च०) यो भूतभविष्यद्वर्तमानान् कालान् (सर्वं यश्चाधि०) सर्वं जगच्चाधितिष्ठति, सर्वाधिष्ठाता सन् कालादूर्ध्वं विराजमानोऽस्ति । (स्वर्य०) यस्य च केवलं निर्विकारं स्वः सुखस्वरूपमस्ति, यस्मिन् दुःखं लेशमात्रमपि नास्ति, यदानन्दघनं ब्रह्मास्ति, (तस्मै ज्ये०) तस्मै ज्येष्ठाय सर्वोत्कृष्टाय ब्रह्मणे महतेऽत्यन्तं नमोऽस्तु नः ॥१॥

(यस्य भू०) यस्य भूमिः प्रमा यथार्थज्ञानसाधनं पादाविवास्ति, (अन्तरिक्षमु०) अन्तरिक्षं यस्योदरतुल्यमस्ति, यश्च सर्वस्मादूर्ध्वं सूर्यरश्मिप्रकाशमयमाकाशं दिवं मूर्धानं शिरोवच्चक्रे कृतवानस्ति, तस्मै० ॥२॥

(यस्य सू०) यस्य सूर्यश्चन्द्रमाश्च पुनः पुनः सर्गादौ नवीने चक्षुषी इव भवतः, योऽग्निमास्यं मुखवच्चक्रे कृतवानस्ति, तस्मै० ॥३॥

(यस्य वातः०) वातः समष्टिर्वायुर्यस्य प्राणापानाविवास्ति, (अङ्गिरसः) 'अङ्गिरा अङ्गारा अङ्कना अञ्चना इति' निरुक्ते अ० ३। खं० १७।।

प्रकाशिकाः किरणाश्चक्षुषी इव भवतः । यो दिशः प्रज्ञानीः प्रज्ञापिनीर्व्यवहार-साधिकाश्चक्रे, तस्मै ह्यनन्तविद्याय ब्रह्मणे महते सततं नमोऽस्तु ।।४।।

भाषार्थ–(यो भूतं च०) जो परमेश्वर एक भूतकाल जो व्यतीत हो गया है, (च) अनेक चकारों से दूसरा जो वर्तमान है, (भव्यं च) और तीसरा भविष्यत् जो होने वाला है, इन तीनों कालों के बीच में जो कुछ होता है उन सब व्यवहारों को वह यथावत् जानता है, (सर्वं यश्चाधितिष्ठति) तथा जो सब जगत् को अपने विज्ञान से ही जानता, रचता, पालन, लय करता और संसार के सब पदार्थों का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है । (स्वर्यस्य च केवलं) जिस का सुख ही केवल स्वरूप है, जो कि मोक्ष और व्यवहार सुख का भी देने वाला है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) ज्येष्ठ अर्थात् सब से बड़ा सब सामर्थ्य से युक्त ब्रह्म जो परमात्मा है उसको अत्यन्त प्रेम से हमारा नमस्कार हो। जो कि सब कालों के ऊपर विराजमान है, जिसको लेशमात्र भी दुःख नहीं होता उस आनन्दघन परमेश्वर को हमारा नमस्कार प्राप्त हो ।।१।।

(यस्य भूमिः प्रमा०) जिस परमेश्वर के होने और ज्ञान में भूमि जो पृथिवी आदि पदार्थ हैं सो प्रमा अर्थात् यथार्थज्ञान की सिद्धि होने का दृष्टान्त है तथा जिस ने अपनी सृष्टि में पृथिवी को पादस्थानी रचा है, (अन्तरिक्षमुतोदरम्) अन्तरिक्ष जो पृथिवी और सूर्य के बीच में आकाश है सो जिसने उदरस्थानी किया है, (दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्) और जिसने अपनी सृष्टि में दिव अर्थात् प्रकाश करने वाले पदार्थों को सब के ऊपर मस्तकस्थानी किया है, अर्थात् जो पृथिवी से लेके सूर्यलोकपर्यन्त सब जगत् को रच के उस में व्यापक होके, जगत् के सब अवयवों में पूर्ण होके सब को धारण कर रहा है, (तस्मै) उस परब्रह्म को हमारा अत्यन्त नमस्कार हो ।।२।।

(यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्र०) और जिसने नेत्रस्थानी सूर्य और चन्द्रमा को किया है, जो कल्प कल्प के आदि में सूर्य और चन्द्रमादि पदार्थों को वारंवार नये नये रचता है, (अग्निं यश्चक्र आस्यम्) और जिसने मुखस्थानी अग्नि को उत्पन्न किया है, (तस्मै०) उसी ब्रह्म को हम लोगों का नमस्कार हो ।।३।।

(यस्य वातः प्राणापानौ) जिसने ब्रह्माण्ड के वायु को प्राण और अपान की नाईं किया है, (चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्) तथा जो प्रकाश करने वाली किरण हैं वे चक्षु की नाईं जिसने की हैं, अर्थात् उन से ही रूप ग्रहण होता है ।

(दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्त०) और जिसने दश दिशाओं को सब व्यवहारों को सिद्ध करने वाली बनाई हैं, ऐसा जो अनन्तविद्यायुक्त परमात्मा सब मनुष्यों का इष्टदेव है, उस ब्रह्म को निरन्तर हमारा नमस्कार हो ।।४।।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।५।। यजु० अ० २५।। मं० १३।।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।।६।।

यतो॑ यतः स॒मीह॑से ततो॑ नो॒ अभ॑यं कुरु ।
शन्नः॑ कुरु प्र॒जाभ्योऽभ॑यं नः प॒शुभ्यः॑ ॥७॥ यजुः अ० ३६ । मं० १७,२२॥

यस्मि॒न्नृचः॒ साम॒ यजूᳬषि॒ यस्मि॑न् प्रति॑ष्ठिता रथना॒भावि॑वा॒राः ।
यस्मिँ॑श्चि॒त्तᳬ सर्व॒मोतं॑ प्र॒जानां॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥८॥
यजुः अ० ३४। मं० ५॥

भाष्यम्–(य आत्मदाः) य आत्मदा विद्याविज्ञानप्रदः, (बलदाः) यः शरीरेन्द्रियप्राणात्ममनसां पुष्ट्युत्साहपराक्रमदृढत्वप्रदः, (यस्य०) यं विश्वेदेवाः सर्वे विद्वांस उपासते यस्यानुशासनं च मन्यन्ते, (यस्य च्छाया०) यस्याश्रय एव मोक्षोऽस्ति, यस्यच्छायाऽकृपाऽनाश्रयो मृत्युर्जन्ममरणकारकोऽस्ति, (कस्मै०) तस्मै कस्मै प्रजापतये 'प्रजापतिर्वै कस्तस्मै हविषा विधेमेति' । शतपथब्राह्मणे। काण्डे ७ अ० ३॥ सुखस्वरूपाय ब्रह्मणे देवाय प्रेमभक्तिरूपेण हविषा वयं विधेम, सततं तस्यैवोपासनं कुर्वीमहि ॥५॥

(द्यौः शान्तिः०) हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! त्वद्भक्त्या त्वत्कृपया च द्यौरन्तरिक्षं, पृथिवी जलमोषधयो वनस्पतयो विश्वे देवाः सर्वे विद्वांसो ब्रह्म वेदः, सर्वं जगच्चास्मदर्थं शान्तं निरुपद्रवं सुखकारकं सर्वदाऽस्तु । अनुकूलं भवतु नः । येन वयं वेदभाष्यं सुखेन विदधीमहि। हे भगवन्नेतया सर्वशान्त्या विद्याबुद्धिविज्ञानारोग्यसर्वोत्तमसहायैर्भवान् मां सर्वथा वर्धयतु तथा सर्वं जगच्च ॥६॥

(यतो यतः०) हे परमेश्वर ! यतो यतो देशात्त्वं समीहसे जगद्रचनपालनार्थां चेष्टां करोषि, ततस्ततो देशान्नोऽस्मानभयं कुरु, यतः सर्वथा सर्वेभ्यो देशेभ्यो भयरहिता भवत्कृपया वयं भवेम । (शन्नः कुरु०) तथा तत्रस्थाभ्यः प्रजाभ्यः पशुभ्यश्च नोऽस्मानभयं कुरु । एवं सर्वेभ्यो देशेभ्यस्तत्रस्थाभ्यः प्रजाभ्यः पशुभ्यश्च नोऽस्मान् शं कुरु, धर्मार्थकाममोक्षादिसुखयुक्तान् स्वानुग्रहेण सद्यः सम्पादय ॥७॥

(यस्मिन्नृचः०) हे भगवन् कृपानिधे ! यस्मिन् मनसि ऋचः सामानि यजूंषि च प्रतिष्ठितानि भवन्ति, यस्मिन् यथार्थमोक्षविद्या च प्रतिष्ठिता भवति, कस्यां क इव ? रथनाभौ अरा इव । (यस्मिँश्च०) यस्मिंश्च प्रजानां चित्तं स्मरणात्मकं सर्वमोतमस्ति सूत्रे मणिगणवत्प्रोतमस्ति । तन्मे मम मनो भवत्कृपया शिवसङ्कल्पं कल्याणप्रियं सत्यार्थप्रकाशं चास्तु, येन वेदानां सत्यार्थः प्रकाश्येत । हे सर्वविद्यामय सर्वार्थविन् ! मदुपरि कृपां विधेहि, यथा निर्विघ्नेन वेदार्थभाष्यं सत्यार्थं पूर्णं वयं कुर्वीमहि, भवद्यशो वेदानां सत्यार्थं विस्तारयेमहि । यं दृष्ट्वा वयं सर्वे सर्वोत्कृष्टगुणा भवेम । ईदृशीं करुणामस्माकमुपरि करोतु भवान् । एतदर्थं प्रार्थ्यते । अनया प्रार्थनयाऽस्मान् शीघ्रमेवानुगृह्णातु । यत इदं सर्वोपकारकं कृत्यं सिद्धं भवेत् ॥८॥

भाषार्थ–(य आत्मदाः०) जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देने वाला है, जो सब विद्या और सत्य सुखों की प्राप्ति कराने वाला है, जिसकी उपासना सब विद्वान् लोग करते आये हैं, और जिस का अनुशासन जो वेदोक्त शिक्षा है उसको अत्यन्त मान्य से सब शिष्ट लोग स्वीकार करते हैं, जिस का आश्रय करना ही मोक्षसुख का कारण है और जिस की

अकृपा ही जन्ममरणरूप दु:खों को देने वाली है, अर्थात् ईश्वर और उस का उपदेश जो सत्यविद्या सत्यधर्म और सत्यमोक्ष हैं उन को नहीं मानना, और जो वेद से विरुद्ध होके अपनी कपोलकल्पना अर्थात् दुष्ट इच्छा से बुरे कामों में वर्त्तता है, उस पर ईश्वर की अकृपा होती है, वही सब दु:खों का कारण है, और जिसकी आज्ञापालन ही सब सुखों का मूल है, (कस्मै०) जो सुखस्वरूप और सब प्रजा का पति है उस परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिए सत्य प्रेम भक्तिरूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें, जिससे हम लोगों को किसी प्रकार का दु:ख कभी न हो ।।५।।

(द्यौ: शान्ति०) हे सर्वशक्तिमन् भगवन् ! आप की भक्ति और कृपा से ही 'द्यौ:' जो सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान है यह सब दिन हम को सुखदायक हो तथा आकाश में पृथिवी जल ओषधि वनस्पति वट आदि वृक्ष, जो संसार के सब विद्वान्, ब्रह्म जो वेद, ये सब पदार्थ और इनसे भिन्न भी जो जगत् है वे सब सुख देने वाले हम को सब काल में हों कि सब पदार्थ सब दिन हमारे अनुकूल रहें, जिस से इस वेद-भाष्य के काम को सुखपूर्वक हम लोग सिद्ध करें । हे भगवन् ! इस सब शान्ति से हम को विद्या बुद्धि विज्ञान आरोग्य और सब उत्तम सहाय को कृपा से दीजिये तथा हम लोगों और सब जगत् को उत्तम गुण और सुख के दान से बढ़ाइये ।।६।।

(यतो यत:०) हे परमेश्वर ! आप जिस-जिस देश से जगत् के रचन और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस उस देश से भय से रहित करिये, अर्थात् किसी देश से हम को किञ्चित् भी भय न हो, (शन्न: कुरु) वैसे ही सब दिशाओं में जो आप की प्रजा और पशु हैं उन से भी हम को भयरहित करें तथा हम से उनको सुख हो, और उनको भी हम से भय न हो तथा आप की प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं, उन सब से जो धर्म, अर्थ काम और मोक्ष पदार्थ हैं उन को आप के अनुग्रह से हम लोग शीघ्र प्राप्त हों, जिस से मनुष्यजन्म के धर्मादि जो फल हैं, वे सुख से सिद्ध हों ।।७।।

(यस्मिन्नृच:) हे भगवन् कृपानिधे ! (ऋच:) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूँषि) यजुर्वेद और इन तीनों के अन्तर्गत होने से अथर्ववेद भी, ये सब जिस में स्थित होते हैं तथा जिस में मोक्षविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और सत्यासत्य का प्रकाश होता है, (यस्मिँश्चित्तं०) जिस में सब प्रजा का चित्त जो स्मरण करने की वृत्ति है सो सब गंठी हुई है, जैसे माला के मणिये सूत्र में गंठे हुए होते हैं, और जैसे रथ के पहिए के बीच भाग में अरे लगे होते हैं, कि उस काष्ठ में जैसे अन्य काष्ठ लगे रहते हैं, ऐसा जो मेरा मन है, सो आप की कृपा से शुद्ध हो तथा कल्याण जो मोक्ष और सत्य धर्म का अनुष्ठान तथा असत्य के परित्याग करने का सङ्कल्प जो इच्छा है, इससे युक्त सदा हो । जिस मन से हम लोगों को आप के किये वेदों के सत्य अर्थ का यथावत् प्रकाश हो ।

हे सर्वविद्यामय सर्वार्थवित् जगदीश्वर ! हम पर आप कृपा धारण करें जिस से हम लोग विघ्नों से सदा अलग रहें, और सत्य अर्थ सहित वेदभाष्य को सम्पूर्ण बना के आप के बनाये वेदों के सत्य अर्थ की विस्ताररूप जो कीर्ति है उस को जगत् में सदा के लिए बढ़ावें, और इस भाष्य को देख के वेदों के अनुसार सत्य का अनुष्ठान करके हम सब लोग श्रेष्ठ गुणों से युक्त सदा हों । इसलिए हम लोग आपकी प्रार्थना प्रेम से सदा करते हैं । इस को आप कृपा से शीघ्र सुनें । जिस से यह जो सब का उपकार करने वाला वेदभाष्य का अनुष्ठान है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त हो ।।

इतीश्वरप्रार्थनाविषय: ।।

अथ वेदोत्पत्तिविषयः

Learn it

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥१॥ यजुः० अ० ३१। मं० ७॥

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् । सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥२॥ अथर्व० कां० १०। प्रपा० २३ । अनु० ४ । मं० २०॥

भाष्यम्–(तस्माद्यज्ञात्स०) तस्मात् यज्ञात्सच्चिदानन्दादिलक्षणात्पूर्णात्पुरुषात् सर्वहुतात्सर्वपूज्यात्सर्वोपास्यात्सर्वशक्तिमतः परब्रह्मणः (ऋचः) ऋग्वेदः (यजुः) यजुर्वेदः (सामानि) सामवेदः (छन्दांꣳसि) अथर्ववेदश्च (जज्ञिरे) चत्वारो वेदास्तेनैव प्रकाशिता इति वेद्यम् । सर्वहुत इति वेदानामपि विशेषणं भवितुमर्हति, वेदाः सर्वहुतः । यतः सर्वमनुष्यैर्होतुमादातुं ग्रहीतुं योग्याः सन्त्यतः। जज्ञिरे अजायतेति क्रियाद्वयं वेदानामनेकविद्यावत्त्वद्योतनार्थम् । तथा तस्मादिति पदद्वयमीश्वरादेव वेदा जाता इत्यवधारणार्थम् । वेदानां गायत्र्यादिच्छन्दोन्वितत्वात्पुनश्छन्दांसीति पदं चतुर्थस्याथर्ववेदस्योत्पत्तिं ज्ञापयतीत्यवधेयम् । 'यज्ञो वै विष्णुः' श० कां० १। अ० १। 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' । यजुर्वेदे इति सर्वजगत्कर्त्तृत्वं विष्णौ परमेश्वर एव घटते, नान्यत्र । वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः परमेश्वरः ॥१॥ Learn it

(यस्मादृचो०) यस्मात्सर्वशक्तिमतः ऋचः ऋग्वेदः (अपातक्षन्) अपातक्षत् उत्पन्नोऽस्ति, यस्मात् परब्रह्मणः (यजुः) यजुर्वेदः (अपाकषन्) प्रादुर्भूतोऽस्ति, तथैव यस्मात्सामानि सामवेदः (आङ्गिरसः) अथर्ववेदश्चोत्पन्नौ स्तः, एवमेव यस्येश्वरस्याङ्गिरसोऽथर्ववेदो मुखं मुखवन्मुख्योऽस्ति, सामानि लोमानीव सन्ति, यजुर्यस्य हृदयमृचः प्राणश्चेति रूपकालङ्कारः। यस्माच्चत्वारो वेदा उत्पन्नाः स कतमः स्विद्देवोऽस्ति तं त्वं ब्रूहीति प्रश्नः ? अस्योत्तरम्–(स्कम्भं तं०) तं स्कम्भं सर्वजगद्धारकं परमेश्वरं त्वं जानीहीति, तस्मात्स्कम्भात्सर्वाधारात्परमेश्वरात् पृथक् कश्चिदप्यन्यो देवो वेदकर्त्ता नैवास्तीति मन्तव्यम् ॥२॥

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः इत्यादि । श० कां० १४। अ० ५।

अस्यायमभिप्रायः । याज्ञवल्क्योऽभिवदति–हे मैत्रेयि ! महत आकाशादपि बृहतः परमेश्वरस्यैव सकाशादृग्वेदादिवेदचतुष्टयं । (निःश्वसितं) निःश्वासवत्सहजतया निःसृतमस्तीति वेद्यम् । यथा शरीराच्छ्वासो निःसृत्य पुनस्तदेव प्रविशति तथैवेश्वराद्वेदानां प्रादुर्भावतिरोभावौ भवत इति निश्चयः॥

भाषार्थ–प्रथम ईश्वर को नमस्कार और प्रार्थना करके पश्चात् वेदों की उत्पत्ति का विषय लिखा जाता है कि वेद किसने उत्पन्न किये हैं । (तस्मात् यज्ञात्स०) सत् जिस का कभी नाश नहीं

होता, चित् जो सदा ज्ञानस्वरूप है, जिसको अज्ञान का लेश भी कभी नहीं होता, आनन्द जो सदा सुखस्वरूप और सब को सुख देने वाला है, इत्यादि लक्षणों से युक्त पुरुष जो सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, जो सब मनुष्यों को उपासना के योग्य इष्टदेव और सब सामर्थ्य से युक्त है, उसी परब्रह्म से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद और (छन्दांसि) इस शब्द से अथर्व भी, ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं। इसलिए सब मनुष्यों को उचित है कि वेदों का ग्रहण करें और वेदोक्त रीति से ही चलें । 'जज्ञिरे' और 'अजायत' इन दोनों क्रियाओं के अधिक होने से वेद अनेक विद्याओं से युक्त हैं ऐसा जाना जाता है । वैसे ही 'तस्मात्' इन दोनों पदों के अधिक होने से यह निश्चय जानना चाहिए कि ईश्वर से ही वेद उत्पन्न हुए हैं किसी मनुष्य से नहीं । वेदों में सब मन्त्र गायत्र्यादि छन्दों से युक्त ही हैं फिर 'छन्दांसि' इस पद के कहने से चौथा जो अथर्ववेद है, उसकी उत्पत्ति का प्रकाश होता है । शतपथ आदि ब्राह्मण और वेदमन्त्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि 'यज्ञ' शब्द से 'विष्णु' का और विष्णु शब्द से सर्वव्यापक जो परमेश्वर है उसी का ग्रहण होता है, क्योंकि सब जगत् की उत्पत्ति करनी परमेश्वर में घटती है अन्यत्र नहीं ।।१।।

(यस्मादृचो अपा०) जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है, उसी से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद (आङ्गिरसः) अथर्ववेद, ये चारों उत्पन्न हुए हैं । इसी प्रकार रूपकालङ्कार से वेदों की उत्पत्ति का प्रकाश ईश्वर करता है कि अथर्ववेद मेरे मुख के समतुल्य सामवेद लोमों के समान, यजुर्वेद हृदय के समान और ऋग्वेद प्राण की नाईं है । (ब्रूहि कतमः स्विदेव सः) कि चारों वेद जिससे उत्पन्न हुए हैं सो कौनसा देव है, उसको तुम मुझ से कहो ? इस प्रश्न का यह उत्तर है कि– (स्कम्भ तं०) जो सब जगत् का धारणकर्ता परमेश्वर है उसका नाम स्कम्भ है, उसी को तुम वेदों का कर्ता जानो, और यह भी जानो कि उसको छोड़ के मनुष्यों की उपासना करने के योग्य दूसरा कोई इष्टदेव नहीं है । क्योंकि ऐसा अभागा कौन मनुष्य है जो वेदों के कर्त्ता सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को छोड़ के दूसरे को परमेश्वर मान के उपासना करे ।।२।।

(एवं वा अरेऽस्य) याज्ञवल्क्य महाविद्वान् जो महर्षि हुए हैं, वह अपनी पण्डिता मैत्रेयी स्त्री को उपदेश करते हैं कि हे मैत्रेयि ! जो आकाशादि से भी बड़ा सर्वव्यापक परमेश्वर है, उससे ही ऋक् यजुः, साम और अथर्व ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं, जैसे मनुष्य के शरीर से श्वास बाहर को आके फिर भीतर को जाता है इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाश करता है, और प्रलय में संसार में वेद नहीं रहते, परन्तु उसके ज्ञान के भीतर वे सदा बने रहते हैं, बीजाङ्कुरवत् ! जैसे बीज में अङ्कुर प्रथम ही रहता है, वही वृक्षरूप होके फिर भी बीज के भीतर रहता है, इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सब दिन बने रहते हैं, उनका नाश कभी नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वर की विद्या है, इससे इसको नित्य ही जानना ।।३।।

अत्र केचिदाहुः–निरवयवात् परमेश्वराच्छब्दमयो वेदः कथमुत्पद्येतेति ?

अत्र ब्रूमः । न सर्वशक्तिमतीश्वरे शङ्केयमुपपद्यते । कुतः ? मुखप्राणादिसाधनमन्तरापि तस्य कार्यं कर्त्तुं सामर्थ्यस्य सदैव विद्यमानत्वात् । अन्यच्च, यथा मनसि विचारणावसरे प्रश्नोत्तरादिशब्दोच्चारणं भवति तथेश्वरेऽपि मन्यताम् । योऽस्ति खलु सर्वशक्तिमान् स नैव कस्यापि सहायं कार्यं कर्त्तुं गृह्णाति । यथास्मदादीनां, सहायेन विना कार्यं कर्त्तुं, सामर्थ्यं नास्ति; न चैवमीश्वरे । यदा निरवयवेनेश्वरेण सकलं जगद्रचितं तदा

वेदरचने का शङ्कास्ति ? कुतः वेदस्य सूक्ष्मरचनवज्जगत्यपि महदाश्चर्यभूतं रचनमीश्वरेण कृतमस्त्यतः ।

भाषार्थ–इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसा प्रश्न करते हैं कि ईश्वर निराकार है, उससे शब्दरूप वेद कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ?

इसका यह उत्तर है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है, उसमें ऐसी शङ्का करनी सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि मुख और प्राणादि साधनों के विना भी परमेश्वर में मुख और प्राणादि के काम करने का अनन्त सामर्थ्य है कि मुख के विना मुख का काम और प्राणादि के विना प्राणादि का काम वह अपने सामर्थ्य से यथावत् कर सकता है । यह दोष तो हम जीव लोगों में आ सकता है कि मुखादि के विना मुखादि का कार्य नहीं कर सकते हैं । क्योंकि हम लोग अल्प सामर्थ्य वाले हैं ।

और इसमें यह दृष्टान्त भी है कि मन में मुखादि अवयव नहीं हैं । तथापि जैसे उसके भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का उच्चारण मानस व्यापार में होता है, वैसे ही परमेश्वर में भी जानना चाहिए। और जो सम्पूर्ण सामर्थ्य वाला है सो किसी कार्य के करने में किसी का सहाय ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वह अपने सामर्थ्य से ही सब कार्यों को कर सकता है । जैसे हम लोग विना सहाय से कोई काम नहीं कर सकते वैसा ईश्वर नहीं है । जैसे देखो कि जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था, उस समय निराकार ईश्वर से सम्पूर्ण जगत् को बनाया, तब वेदों के रचने में क्या शङ्का रही ? जैसे वेदों में अत्यन्त सूक्ष्म विद्या का रचन ईश्वर ने किया है, वैसे ही जगत् में भी नेत्र आदि पदार्थों का अत्यन्त आश्चर्यरूप रचन किया है तो क्या वेदों की रचना निराकार ईश्वर नहीं कर सकता ?

ननु जगद्रचने तु खल्वीश्वरमन्तरेण न कस्यापि सामर्थ्यमस्ति वेदरचने त्वन्यस्यान्यग्रन्थरचनवत् सामर्थ्यं स्यादिति ?

अत्रोच्यते–ईश्वरेण रचितस्य वेदस्याध्ययनानन्तरमेव ग्रन्थरचने कस्यापि सामर्थ्यं स्यान्न चान्यथा । नैव कश्चिदपि पठनश्रवणमन्तरा विद्वान् भवति । यथेदानीं किञ्चिदपि शास्त्रं पठित्वोपदेशं श्रुत्वा व्यवहारं च दृष्ट्वैव मनुष्याणां ज्ञानं भवति । तद्यथा–कस्यचित्सन्तानमेकान्ते रक्षयित्वाऽन्नपानादिकं युक्त्या दद्यात्तेन सह भाषणादिव्यवहारं लेशमात्रमपि न कुर्य्याद्यावत्तस्य मरणं न स्यात् । यथा तस्य किञ्चिदपि यथार्थं ज्ञानं न भवति । यथा च महारण्यस्थानां मनुष्याणामुपदेशमन्तरा पशुवत्प्रवृत्तिर्भवति । तथैवादिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं वेदोपदेशमन्तरा सर्वमनुष्याणां प्रवृत्तिर्भवेत् । पुनर्ग्रन्थरचनस्य तु का कथा ?

भाषार्थ–प्र०–जगत् के रचने में तो ईश्वर के विना किसी जीव का सामर्थ्य नहीं है, परन्तु जैसे व्याकरणादि शास्त्र रचने में मनुष्यों का सामर्थ्य होता है, वैसे वेदों के रचने में भी जीव का सामर्थ्य हो सकता है ?

उ०–नहीं, किन्तु जब ईश्वर ने प्रथम वेद रचे हैं, उनको पढ़ने के पश्चात् ग्रन्थ रचने का सामर्थ्य किसी मनुष्य को हो सकता है । उसके पढ़ने और ज्ञान के विना कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता। जैसे इस समय में किसी शास्त्र को पढ़ के, किसी का उपदेश सुन के और मनुष्यों के परस्पर व्यवहारों को देख के ही मनुष्यों को ज्ञान होता है, अन्यथा कभी नहीं होता । जैसे किसी मनुष्य के बालक को जन्म से एकान्त में रख के उसको अन्न और जल युक्ति से देवे, उसके साथ

भाषणादि व्यवहार लेशमात्र भी कोई मनुष्य न करे, कि जब तक उसका मरण न हो तब तक उसको इसी प्रकार से रखे तो मनुष्यपने का भी ज्ञान नहीं हो सकता तथा जैसे बड़े वन में मनुष्यों को विना उपदेश के यथार्थ ज्ञान नहीं होता, किन्तु पशुओं की नाईं उनकी प्रवृत्ति देखने में आती है, वैसे ही वेदों के उपदेश के विना भी सब मनुष्यों की प्रवृत्ति हो जाती, फिर ग्रन्थ रचने के सामर्थ्य की तो कथा क्या ही कहनी है ? इससे वेदों को ईश्वर के रचित मानने से ही कल्याण है, अन्यथा नहीं।

मैवं वाच्यम् । ईश्वरेण मनुष्येभ्यः स्वाभाविकं ज्ञानं दत्तं, तच्च सर्वग्रन्थेभ्य उत्कृष्टमस्ति नैव तेन विना वेदानां शब्दार्थसम्बन्धानामपि ज्ञानं भवितुमर्हति, तदुन्नत्या ग्रन्थरचनमपि करिष्यन्त्येव, पुनः किमर्थं मन्यते वेदोत्पादनमीश्वरेण कृतमिति ?

एवं प्राप्ते वदामहे—नैव पूर्वोक्तायाशिक्षितायैकान्ते रक्षिताय बालकाय महारण्यस्थेभ्यो मनुष्येभ्यश्चेश्वरेण स्वाभाविकं ज्ञानं दत्तं किम्? कथं नास्मदादयोऽप्यन्येभ्यः शिक्षाग्रहणमन्तरेण वेदाध्ययनेन च विना पण्डिता भवन्ति ? तस्मात् किमागतम् ? न शिक्षया विनाध्ययनेन च स्वाभाविकज्ञानमात्रेण कस्यापि निर्वाहो भवितुमर्हति । यथास्मदादिभिरप्यन्येषां विदुषां विद्वत्कृतानां ग्रन्थानां च सकाशादनेकविधं ज्ञानं गृहीत्वैव ग्रन्थान्तरं रच्यते, तथेश्वरज्ञानस्य सर्वेषां मनुष्याणामपेक्षाऽवश्यं भवति । किञ्च न सृष्टेरारम्भसमये पठनपाठनक्रमो ग्रन्थश्च कश्चिदप्यासीत्तदानीमीश्वरोपदेशमन्तरा न च कस्यापि विद्यासम्भवो बभूव, पुनः कथं कश्चिज्जनो ग्रन्थं रचयेत् । मनुष्याणां नैमित्तिकज्ञाने स्वातन्त्र्याभावात् । स्वाभाविकज्ञानमात्रेणैव विद्याप्राप्त्यनुपपत्तेश्च ।

यच्चोक्तं स्वकीयं ज्ञानमुत्कृष्टमित्यादि, तदप्यसमञ्जसम् । तस्य साधनकोटौ प्रविष्टत्वात्; चक्षुर्वत् । यथा चक्षुर्मनःसाहित्येन विना ह्यकिञ्चित्करमस्ति तथान्येषां विदुषामीश्वरज्ञानस्य च साहित्येन विना स्वाभाविकज्ञानमप्यकिञ्चित्करमेव भवतीति ।

भाषार्थ—प्र०—ईश्वर ने मनुष्यों को स्वाभाविक ज्ञान दिया है सो सब ग्रन्थों से उत्तम है, क्योंकि उसके विना वेदों के शब्द, अर्थ और सम्बन्ध का ज्ञान कभी नहीं हो सकता । और जब उस ज्ञान की क्रम से वृद्धि होगी, तब मनुष्य लोग विद्यापुस्तकों को भी रच लेंगे, पुनः वेदों की उत्पत्ति ईश्वर से क्यों माननी ?

उ०—जो प्रथम दृष्टान्त बालक का एकान्त में रखने का और दूसरा वनवासियों का भी कहा था, क्या उनको स्वाभाविक ज्ञान ईश्वर ने नहीं दिया है ? वे स्वाभाविक ज्ञान से विद्वान् क्यों नहीं होते ? इससे यह बात निश्चित है कि ईश्वर का किया उपदेश जो वेद है, उसके विना किसी मनुष्य को यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता । जैसे हम लोग वेदों के पढ़ने, विद्वानों की शिक्षा और उन के किये ग्रन्थों को पढ़े विना पण्डित नहीं होते, वैसे ही सृष्टि के आदि में भी परमात्मा जो वेदों का उपदेश नहीं करता तो आज पर्यन्त किसी मनुष्य को धर्मादि पदार्थों की यथार्थविद्या नहीं होती । इससे क्या जाना जाता है कि विद्वानों की शिक्षा और वेद पढ़े विना केवल स्वाभाविक ज्ञान से किसी मनुष्य का निर्वाह नहीं हो सकता । जैसे हम लोग अन्य विद्वानों से वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रकार के विज्ञान को ग्रहण करके ही पीछे ग्रन्थों को भी रच सकते हैं, वैसे ही ईश्वर के ज्ञान की भी अपेक्षा सब मनुष्यों को अवश्य है । क्योंकि सृष्टि के आरम्भ में पढ़ने और पढ़ाने की कुछ भी व्यवस्था नहीं थी तथा विद्या का कोई ग्रन्थ भी नहीं था । उस समय ईश्वर के किये वेदोपदेश के विना विद्या

के नहीं होने से कोई मनुष्य ग्रन्थ की रचना कैसे कर सकता है ? क्योंकि सब मनुष्यों को सहायकारी ज्ञान में स्वतन्त्रता नहीं है । और स्वाभाविक ज्ञानमात्र से विद्या की प्राप्ति किसी को नहीं हो सकती । इसीलिए ईश्वर ने सब मनुष्यों के हित के लिए वेदों की उत्पत्ति की है ।

और जो यह कहा था कि अपना ज्ञान सब वेदादि ग्रन्थों से श्रेष्ठ है सो भी अन्यथा है, क्योंकि वह स्वाभाविक जो ज्ञान है सो साधनकोटि में है । **जैसे मन के संयोग के विना आंख से कुछ भी नहीं देख पड़ता तथा आत्मा के संयोग के विना मन से भी कुछ नहीं होता,** वैसे ही जो स्वाभाविक ज्ञान है सो वेद और विद्वान् की शिक्षा के ग्रहण करने में साधनमात्र ही है तथा पशुओं के समान व्यवहार का भी साधन है, परन्तु वह स्वाभाविक ज्ञान धर्म, अर्थ, काम और मोक्षविद्या का साधन स्वतन्त्रता से कभी नहीं हो सकता ।

वेदोत्पादन ईश्वरस्य किं प्रयोजनमस्तीत्यत्र वक्तव्यम् ?

उच्यते–वेदानामनुत्पादने खलु तस्य किं प्रयोजनमस्तीति ? अस्योत्तरं तु वयं न जानीमः । सत्यमेवमेतत् । तावद् वेदोत्पादने यदस्ति प्रयोजनं तच्छृणुत । ईश्वरेऽनन्ता विद्यास्ति न वा ? अस्ति । सा किमर्थास्ति ? स्वार्था । ईश्वरः परोपकारं न करोति किम्? करोति तेन किम् ? तेनेदमस्ति, विद्या स्वार्था परार्था च भवति तस्यास्तद्विषयत्वात् ।

यद्यस्मदर्थमीश्वरो विद्योपदेशं न कुर्यात्तदान्यतरपक्षे सा निष्फला स्यात् । तस्मादीश्वरेण स्वविद्याभूतवेदस्योपदेशेन सप्रयोजनता सम्पादिता । परमकारुणिको हि परमेश्वरोऽस्ति, पितृवत् । यथा पिता स्वसन्ततिं प्रति सदैव करुणां दधाति, तथेश्वरोऽपि परमकृपया सर्वमनुष्यार्थं वेदोपदेशमुपचक्रे । अन्यथान्धपरम्परया मनुष्याणां धर्मार्थकाममोक्षसिद्ध्या विना परमानन्द एव न स्यात् । यथा कृपायमाणेनेश्वरेण प्रजासुखार्थं कन्दमूलफलतृणादिकं रचितं, स कथं न सर्वसुखप्रकाशिकां सर्वविद्यामयीं वेदविद्यामुपदिशेत् ? किञ्च ब्रह्माण्डस्थोत्कृष्ट-सर्वपदार्थप्राप्त्या यावत्सुखं भवति न तत् विद्याप्राप्तसुखस्य सहस्रतमेनांशेनापि तुल्यं भवत्यतो वेदोपदेश ईश्वरेण कृत एवास्तीति निश्चयः ।

भाषार्थ–प्र०–वेदों के उत्पन्न करने में ईश्वर को क्या प्रयोजन था ?

उ०–मैं तुमसे पूछता हूं कि वेदों के उत्पन्न नहीं करने में उसको क्या प्रयोजन था? जो तुम यह कहो कि इसका उत्तर हम नहीं जानते तो ठीक है, क्योंकि वेद तो ईश्वर की नित्य विद्या है, उसकी उत्पत्ति या अनुत्पत्ति हो ही नहीं सकती । परन्तु हम जीव लोगों के लिए ईश्वर ने जो वेदों का प्रकाश किया है सो उसकी हम पर परमकृपा है । जो वेदोत्पत्ति का प्रयोजन है सो आप लोग सुनें । **प्र०**–ईश्वर में अनन्त विद्या है वा नहीं ? **उ०**–है । **प्र०**–सो उसकी विद्या किस प्रयोजन के लिये है ? **उ०**–अपने ही लिये, जिससे सब पदार्थों का रचना और जानना होता है । **प्र०**–अच्छा तो मैं आप से पूछता हूं कि ईश्वर परोपकार को करता है वा नहीं ? **उ०–ईश्वर परोपकारी है । इससे क्या आया ? इससे यह बात आती है कि विद्या जो है सो स्वार्थ और परार्थ के लिए होती है, क्योंकि विद्या का यही गुण है कि स्वार्थ और परार्थ इन दोनों को सिद्ध करना ।**

जो परमेश्वर अपनी विद्या का हम लोगों के लिए उपदेश न करे तो विद्या से जो परोपकार करना गुण है सो उसका नहीं रहे । इससे परमेश्वर ने अपनी वेदविद्या का हम लोगों के लिए उपदेश

करके सफलता सिद्ध करी है, क्योंकि परमेश्वर हम लोगों का माता पिता के समान है । हम सब लोग जो उसकी प्रजा हैं उन पर नित्य कृपादृष्टि रखता है । जैसे अपने सन्तानों के ऊपर पिता और माता सदैव करुणा को धारण करते हैं कि सब प्रकार से हमारे पुत्र सुख पावें, वैसे ही ईश्वर भी सब मनुष्यादि सृष्टि पर कृपादृष्टि सदैव रखता है, इससे ही वेदों का उपदेश हम लोगों के लिए किया है । जो परमेश्वर अपनी वेदविद्या का उपदेश मनुष्यों के लिए न करता तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती । उसके विना परम आनन्द भी किसी को नहीं होता । जैसे परमकृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिए कन्द, मूल, फल और घास आदि छोटे-छोटे भी पदार्थ रचे हैं सो ही ईश्वर सब सुखों के प्रकाश करने वाली, सब सत्यविद्याओं से युक्त वेदविद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिए क्यों न करता ? क्योंकि जितने ब्रह्माण्ड में उत्तम पदार्थ हैं उनकी प्राप्ति से जितना सुख होता है सो सुख विद्याप्राप्ति से होने वाले सुख से हजारहवें अंश के भी समतुल्य नहीं हो सकता । ऐसा सर्वोत्तम विद्या पदार्थ जो वेद है उसका उपदेश परमेश्वर क्यों न करता ? इससे निश्चय करके यह जानना कि वेद ईश्वर के ही बनाये हैं ।

ईश्वरेण लेखनीमसीपात्रादिसाधनानि वेदपुस्तकलेखनाय कुतो लब्धानि ?

अत्रोच्यते-अह ह ह ! महतीयं शङ्का भवता कृता, विना हस्तपादाद्यवयवैः काष्ठ-लोष्ठादिसामग्रीसाधनैश्च यथेश्वरेण जगद्रचितं तथा वेदा अपि रचिताः, सर्वशक्तिमतीश्वरे वेदरचनं प्रत्येवं मा शङ्कि । किन्तु पुस्तकस्था वेदा तेनादौ नोत्पादिताः। किं तर्हि ? ज्ञान-मध्ये प्रेरिताः । केषाम् ? अग्निवाय्वादित्याङ्गिरसाम् । ते तु ज्ञानरहिता जडाः सन्ति ? मैवं वाच्यं, सृष्ट्यादौ मनुष्यदेहधारिणस्ते ह्यासन् । कुतः जडे ज्ञानकार्यासम्भवात् । यत्रार्था-सम्भवोऽस्ति तत्र लक्षणा भवति । तद्यथा कश्चिदाप्तः कञ्चित्प्रति वदति मञ्चाः क्रोशन्तीति । अत्र मञ्चस्था मनुष्याः क्रोशन्तीति विज्ञायते । तथैवात्रापि विज्ञायताम् । विद्याप्रकाशसम्भवो मनुष्येष्वेव भवितुमर्हतीति । अत्र प्रमाणम्-

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ॥

शा० कां० ११। अ० ५ । ब्रा० २ । कं० ३॥

एषां ज्ञानमध्ये प्रेरयित्वा तद्द्वारा वेदाः प्रकाशिताः । सत्यमेवमेतत् । परमेश्वरेण तेभ्यो ज्ञानं दत्तं, ज्ञानेन तैर्वेदानां रचनं कृतमिति विज्ञायते ?

मैवं विज्ञायि । ज्ञानं किंप्रकारकं दत्तम् ? वेदप्रकारकम् । तदीश्वरस्य वा तेषाम्, ईश्वरस्यैव । पुनस्तेनैव प्रणीता वेदा आहोस्वित्तैश्च ? यस्य ज्ञानं तेनैव प्रणीताः । पुनः किमर्था शङ्का कृता तैरेव रचिता इति ? निश्चयकरणार्था ।

भाषार्थ-प्र०-वेदों के रचने और वेदपुस्तक लिखने के लिए ईश्वर ने लेखनी, स्याही और दवात आदि साधन कहां से लिये, क्योंकि उस समय कागज आदि पदार्थ तो बने ही न थे ?

उ०-वाह वाह वाह जी ! आपने बड़ी शङ्का करी आपकी बुद्धि की क्या स्तुति करें । अच्छा आपसे मैं पूछता हूं कि हाथ पग आदि अङ्गों तथा काष्ठ लोह आदि सामग्री साधनों के विना ईश्वर ने जगत् को क्योंकर रचा है ? जैसे हाथ आदि अवयवों के विना उसने सब जगत् को रचा है वैसे ही वेदों को भी सब साधनों के विना रचा है, क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है । इस से ऐसी शङ्का उस में आप को करनी योग्य

नहीं। परन्तु इसके उत्तर में इस बात को जानो कि वेदों को पुस्तकों में लिखके सृष्टि के आदि में ईश्वर ने प्रकाशित नहीं किये थे । **प्र०**—तो किस प्रकार से किये थे ? **उ०**—ज्ञान के बीच में । **प्र०**—किनके ज्ञान में ? **उ०**—अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा के । **प्र०**—वे तो जड़ पदार्थ हैं ? **उ०**—ऐसा मत कहो, वे सृष्टि के आदि में मनुष्यदेहधारी हुए थे, क्योंकि जड़ में ज्ञान के कार्य का असम्भव है, और जहां जहां असम्भव होता है वहां वहां लक्षणा होती है । जैसे किसी सत्यवादी विद्वान् पुरुष ने किसी से कहा कि खेतों में मञ्चान पुकारते हैं, इस वाक्य में लक्षणा से यह अर्थ होता है कि मञ्चान के ऊपर मनुष्य पुकार रहे हैं, इसी प्रकार से यहां भी जानना कि विद्या के प्रकाश होने का सम्भव मनुष्यों में ही हो सकता है, अन्यत्र नहीं । इसमें 'तेभ्यः०' इत्यादि शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण लिखा है। उन चार मनुष्यों के ज्ञान के बीच में वेदों का प्रकाश करके उन से ब्रह्मादि के बीच में वेदों का प्रकाश कराया था ।

प्र०—सत्य बात है कि ईश्वर ने उन को ज्ञान दिया होगा और उनने अपने ज्ञान से वेदों का रचन किया होगा ?

उ०—ऐसा तुमको कहना उचित नहीं, क्योंकि तुम यह भी जानते हो कि ईश्वर ने उनको ज्ञान किस प्रकार का दिया था ? **उ०**—उनको वेदरूप ज्ञान दिया था ? **प्र०**—अच्छा तो मैं आपसे पूछता हूं कि वह ज्ञान ईश्वर का है वा उनका ? **उ०**—वह ज्ञान ईश्वर का ही है । **प्र०**—फिर आपसे मैं पूछता हूं कि वेद ईश्वर के बनाये हैं वा उनके ? **उ०**—जिसका ज्ञान है उसी ने वेदों को बनाया। फिर उन्हीं ने वेद रचे हैं यह शङ्का आपने क्यों की थी ? **उ०**—निश्चय करने और कराने के लिए।

ईश्वरो न्यायकार्यस्ति वा पक्षपाती ? न्यायकारी । तर्हि चतुर्णामेव हृदयेषु वेदाः प्रकाशिताः कुतो न सर्वेषामिति ?

अत्राह—अत ईश्वरे पक्षपातस्य लेशोऽपि नैवागच्छति, किन्त्वनेन तस्य न्यायकारिणः परमात्मनः सम्यङ् न्यायः प्रकाशितो भवति । कुतः ? न्यायेत्यस्यैव नामास्ति यो यादृशं कर्म कुर्यात्तस्मै तादृशमेव फलं दद्यात् । अत्रैवं वेदितव्यम्—तेषामेव पूर्वपुण्यमासीद्यतः खल्वेतेषां हृदये वेदानां प्रकाशः कर्त्तुं योग्योऽस्ति ।

किं च ते तु सृष्टेः प्रागुत्पन्नास्तेषां पूर्वपुण्यं कुत आगतम् ?

अत्र ब्रूमः—सर्वे जीवाः स्वरूपतोऽनादयस्तेषां कर्म्माणि सर्वं कार्यं जगच्च प्रवाहेणैवानादीनि सन्तीति । एतेषामनादित्वस्य प्रमाणपूर्वकं प्रतिपादनमग्रे करिष्यते ।

भाषार्थ—प्र०—ईश्वर न्यायकारी है वा पक्षपाती ? **उ०**—न्यायकारी । **प्र०**—जब परमेश्वर न्यायकारी है तो सब के हृदयों में वेदों का प्रकाश क्यों नहीं किया, क्योंकि चारों के हृदयों में प्रकाश करने से ईश्वर में पक्षपात आता है ?

उ०—इससे ईश्वर में पक्षपात का लेश कदापि नहीं आता, किन्तु उस न्यायकारी परमात्मा का साक्षात् न्याय ही प्रकाशित होता है । क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो जैसा कर्म करे उस को वैसा ही फल दिया जाय । अब जानना चाहिए कि उन्हीं चार पुरुषों का ऐसा पूर्वपुण्य था कि उनके हृदय में वेदों का प्रकाश किया गया ।

प्र०—वे चार पुरुष तो सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए थे, उनका पूर्वपुण्य कहां से आया?

उ०—जीव, जीवों के कर्म और स्थूल कार्य जगत् ये तीनों अनादि हैं, जीव और कारणजगत्

स्वरूप से अनादि हैं, कर्म और स्थूल कार्यजगत् प्रवाह से अनादि हैं। इसकी व्याख्या प्रमाणपूर्वक आगे लिखी जायेगी ।

किं गायत्र्यादिच्छन्दोरचनमपीश्वरेणैव कृतम् ?

इयं कुतः शङ्काऽभूत् ? किमीश्वरस्य गायत्र्यादिच्छन्दोरचनज्ञानं नास्ति ? अस्त्येव तस्य सर्वविद्यावत्त्वात् । अतो निर्मूला सा शङ्काऽस्ति ।

चतुर्मुखेन ब्रह्मणा वेदा निरमायिषतेत्यैतिह्यम् ?

मैवं वाच्यम् ऐतिह्यस्य शब्दप्रमाणान्तर्भावात् । 'आप्तोपदेशः शब्दः ॥' न्यायशास्त्रे अ० १ । सू० ७ ॥ **इति गोतमाचार्येणोक्तत्वात् ।** 'शब्द ऐतिह्यमि' त्यादि च ॥ **अस्यैवोपरि 'आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा, यथा दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्त उपदेष्टा, साक्षात्करणमर्थस्याप्तिस्तया प्रवर्त्तत इत्याप्तः' इति न्यायभाष्ये वात्स्यायनोक्तेः । अतः सत्यस्यैवैतिह्यत्वेन ग्रहणं नानृतस्य । यत्सत्यप्रमाणमाप्तोपदिष्टमैतिह्यं तद् ग्राह्यं । नातो विपरीतमिति, अनृतस्य प्रमत्तगीतत्वात् । एवमेव व्यासेनर्षिभिश्च वेदा रचिता इत्याद्यपि मिथ्यैवास्तीति मन्यताम् । नवीनपुराणग्रन्थानां तन्त्रग्रन्थानां च वैयर्थापत्तेश्चेति ।**

भाषार्थ–प्र०–क्या गायत्र्यादि छन्दों का रचन ईश्वर ने ही किया है ?

उ०–यह शङ्का आपको कहां से हुई ? **प्र०**–मैं तुम से पूछता हूं क्या गायत्र्यादि छन्दों के रचने का ज्ञान ईश्वर को नहीं है । **उ०**–ईश्वर को सब ज्ञान है । अच्छा तो ईश्वर के समस्त विद्यायुक्त होने से आपकी यह शंका भी निर्मूल है ?

प्र०–चार मुख के ब्रह्मा जी ने वेदों को रचा, ऐसे इतिहास को हम लोग सुनते हैं ।

उ०–ऐसा मत कहो, क्योंकि इतिहास को शब्दप्रमाण के भीतर गिना है । (आप्तो०) अर्थात् सत्यवादी विद्वानों का जो उपदेश है उस को शब्दप्रमाण में गिनते हैं, ऐसा न्यायदर्शन में गौतमाचार्य ने लिखा है, तथा शब्दप्रमाण से जो युक्त है वही इतिहास मानने के योग्य है, अन्य नहीं । इस सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने आप्त का लक्षण कहा है कि–जो साक्षात् सब पदार्थविद्याओं का जाननेवाला कपट आदि दोषों से रहित धर्मात्मा है, कि जो सदा सत्यवादी, सत्यमानी और सत्यकारी है, जिस को पूर्ण विद्या से आत्मा में जिस प्रकार का ज्ञान है उसके कहने की इच्छा की प्रेरणा से सब मनुष्यों पर कृपादृष्टि से सब सुख होने के लिए सत्य उपदेश करने वाला है, और जो पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थों को यथावत् साक्षात् करना और उसी के अनुसार वर्त्तना है इसी का नाम आप्ति है, इस आप्ति से जो युक्त हो उसको 'आप्त' कहते हैं । उसी के उपदेश का प्रमाण होता है, इससे विपरीत मनुष्य का नहीं, क्योंकि सत्य वृत्तान्त का ही नाम इतिहास है, अनृत का नहीं । सत्यप्रमाणयुक्त जो इतिहास है वह सब मनुष्यों को ग्रहण करने के योग्य है, इससे विपरीत इतिहास का ग्रहण करना किसी को योग्य नहीं, क्योंकि प्रमादी पुरुष के मिथ्या कहने का इतिहास में ग्रहण ही नहीं होता । इसी प्रकार व्यास जी ने चारों वेदों की संहिताओं का संग्रह किया है, इत्यादि इतिहासों को भी मिथ्या ही जानना चाहिए । जो आजकल के बने ब्रह्मवैवर्तादि पुराण और ब्रह्मयामल आदि तन्त्रग्रन्थ हैं इनमें कहे इतिहासों का प्रमाण करना किसी मनुष्य को योग्य नहीं, क्योंकि इनमें असम्भव और अप्रमाण कपोलकल्पित मिथ्या इतिहास बहुत लिख रक्खे हैं । और जो सत्यग्रन्थ शतपथ ब्राह्मणादि हैं उन के इतिहासों का भी त्याग नहीं करना चाहिए ।

यो मन्त्रसूक्तानामृषिर्लिखितस्तेनैव तद्रचितमिति कुतो न स्यात् ?

मैवं वादि । ब्रह्मादिभिरपि वेदानामध्ययनश्रवणयोः कृतत्वात् । 'यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै०' इति श्वेताश्वतरोपनिषदादिवचनस्य विद्यमानत्वात् । एवं यदर्षीणामुत्पत्तिरपि नासीत्तदा ब्रह्मादीनां समीपे वेदानां वर्त्तमानत्वात् तद्यथा–

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् । दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥१॥ अ० १॥

अध्यापयामास पितृन् शिशुराङ्गिरसः कविः ॥ अ० २ ।

इति मनुसाक्ष्यत्वात् । अग्न्यादीनां सकाशाद् ब्रह्मापि वेदानामध्ययनं चक्रेऽन्येषां व्यासादीनां तु का कथा !

भाषार्थ–प्र०–जो सूक्त और मन्त्रों के ऋषि लिखे जाते हैं, उन्होंने ही वेद रचे हों ऐसा क्यों नहीं माना जाय ?

उ०–ऐसा मत कहो, क्योंकि ब्रह्मादि ने भी वेदों को पढ़ा है । सो श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में यह वचन है कि–'जिसने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मादि को सृष्टि की आदि में अग्नि आदि के द्वारा वेदों का भी उपदेश किया है उसी परमेश्वर के शरण को हम लोग प्राप्त होते हैं ।' इसी प्रकार ऋषियों ने भी वेदों को पढ़ा है । क्योंकि जब मरीच्यादि ऋषि और व्यासादि मुनियों का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय में भी ब्रह्मादि के समीप वेदों का वर्तमान था । इस में मनु के श्लोकों की भी साक्षी है कि–'पूर्वोक्त अग्नि, वायु, रवि और अङ्गिरा से जब ब्रह्मा जी ने वेदों को पढ़ा था तो व्यासादि और हम लोगों की तो कथा क्या ही कहनी है ।

कथं वेदः श्रुतिश्च द्वे नाम्नी ऋक्संहितादीनां जाते इति ?

अर्थवशात् (विद) ज्ञाने, (विद) सत्तायाम्, (विद्लृ) लाभे, (विद) विचारणे, एतेभ्यो 'हलश्च' इति सूत्रेण करणाधिकरणकारकयोर्घञ्प्रत्यये कृते वेदशब्दः साध्यते । तथा (श्रु) श्रवणे, इत्यस्माद्धातोः करणकारके क्तिन्प्रत्यये कृते श्रुतिशब्दो व्युत्पद्यते । विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते, लभन्ते, विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते 'वेदाः' । तथाऽऽदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभिः सर्वाः सत्यविद्याः श्रूयन्तेऽनया सा 'श्रुतिः' । न कस्यचिद्देहधारिणः सकाशात्कदाचित्कोऽपि वेदानां रचनं दृष्टवान् । कुतः ? निरवयवेश्वरात्तेषां प्रादुर्भावात् । अग्निवाय्वादित्याङ्गिरसस्तु निमित्तीभूता वेदप्रकाशार्थमीश्वरेण कृता इति विज्ञेयम् । तेषां ज्ञानेन वेदानामनुत्पत्तेः । वेदेषु शब्दार्थसम्बन्धाः परमेश्वरादेव प्रादुर्भूताः तस्य पूर्णविद्यावत्त्वात् । अतः किं सिद्धम् ! अग्निवायुरव्याङ्गिरोमनुष्यदेहधारिजीवद्वारेण परमेश्वरेण श्रुतिर्वेदः प्रकाशीकृत इति बोध्यम् ।

भाषार्थ–प्र०–वेद और श्रुति ये दो नाम ऋग्वेदादि संहिताओं के क्यों हुए हैं ?

उ०–अर्थभेद से । क्योंकि एक (विद) धातु ज्ञानार्थ है, दूसरा (विद) सत्तार्थ है, तीसरे (विद्लृ) का लाभ अर्थ है, चौथे (विद) का अर्थ विचार है । इन चार धातुओं से करण और अधिकरणकारक में 'घञ्' प्रत्यय करने से 'वेद' शब्द सिद्ध होता है । । तथा (श्रु) धातु श्रवण अर्थ में है, इससे करणकारक में 'क्तिन्' प्रत्यय के होने से श्रुति शब्द सिद्ध होता है । जिनके पढ़ने से

यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है, जिनको पढ़ के विद्वान् होते हैं, जिन से सब सुखों का लाभ होता है और जिनसे ठीक ठीक सत्यासत्य का विचार मनुष्यों को होता है, इससे ऋक्संहितादि का 'वेद' नाम है । वैसे ही सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त और ब्रह्मादि से लेके हम लोग पर्यन्त जिससे सब सत्यविद्याओं को सुनते आते हैं इससे वेदों का 'श्रुति' नाम पड़ा है । क्योंकि किसी देहधारी ने वेदों के बनाने वाले को साक्षात् कभी नहीं देखा, इस कारण से जाना गया कि वेद निराकार ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं, और उनको सुनते सुनाते ही आज पर्यन्त सब लोग चले आते हैं । तथा अग्नि वायु आदित्य और अङ्गिरा इन चारों मनुष्यों को, जैसे वादित्र को कोई बजावे वा काठ की पुतली की चेष्टा करावे, इसी प्रकार ईश्वर ने उनको निमित्तमात्र किया था, क्योंकि उनके ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई । किन्तु इससे यह जानना कि वेदों में जितने शब्द अर्थ और सम्बन्ध हैं वे सब ईश्वर ने अपने ही ज्ञान से उनके द्वारा प्रकट किये हैं ।

वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि व्यतीतानि ?

अत्रोच्यते—एको वृन्दः षण्णवतिः कोट्योऽष्टौ लक्षाणि द्विपञ्चाशत्सहस्राणि नवशतानि षट्सप्ततिश्चैतावन्ति १९६०८५२९७६ वर्षाणि व्यतीतानि । सप्तसप्ततितमोऽयं संवत्सरो वर्त्तत इति वेदितव्यम् । एतावन्त्येव वर्षाणि वर्तमानकल्पसृष्टेश्चेति ।

कथं विज्ञायते ह्येतावन्त्येव वर्षाणि व्यतीतानीति ?

अत्राह—अस्यां वर्त्तमानायां सृष्टौ वैवस्वतस्य सप्तमस्यास्य मन्वन्तरस्येदानीं वर्त्तमानत्वाद-स्मात्पूर्वं षण्णां मन्वन्तराणां व्यतीतत्वाच्चेति । तद्यथा—स्वायम्भवः, स्वारोचिष, औत्तमिस्तामसो, रैवतश्चाक्षुषो, वैवस्वतश्चेति सप्तैते मनवस्तथा सावर्ण्यादय आगामिनः सप्त चैते मिलित्वा १४ चतुर्दशैव भवन्ति । तत्रैकसप्ततिश्चातुर्युगानि ह्येकैकस्य मनोः परिमाणं भवति । ते चैकस्मिन्ब्राह्मदिने १४ चतुर्दशभुक्तभोगा भवन्ति । एकसहस्रं १००० चातुर्युगानि ब्राह्मदिनस्य परिमाणं भवति । ब्राह्म्या रात्रेरपि तावदेव परिमाणं विज्ञेयम् । सृष्टेर्वर्त्तमानस्य दिनसंज्ञास्ति, प्रलयस्य च रात्रिसंज्ञेति । अस्मिन्ब्राह्मदिने षट् मनवस्तु व्यतीताः, सप्तमस्य वैवस्वतस्य वर्त्तमानस्य मनोरष्टाविंशतितमोऽयं कलिर्वर्त्तते । तत्रास्य वर्त्तमानस्य कलियुगस्यैतावन्ति ४९७६ चत्वारिसहस्राणि नवशतानि षट्सप्ततिश्च वर्षाणि तु गतानि सप्तसप्ततितमोऽयं संवत्सरो वर्त्तते । यमार्या विक्रमस्यैकोनविंशतिशतं त्रयस्त्रिंशत्तमोत्तरं संवत्सरं वदन्ति । अत्र विषये प्रमाणम्—

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः । एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥१॥
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् । तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥२
इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु । एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥३॥
यदेतत् परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् । एतद् द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥४॥
दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया । ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥५॥
तद्वै युगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः । रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥६॥
यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् । तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥७॥
मन्वन्तराण्यसंख्यानि सृष्टिः संहार एव च । क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥८॥

मनु० अध्याये १

कालस्य परिमाणार्थं ब्राह्माहोरात्रादयः सुगमबोधार्था संज्ञाः क्रियन्ते । यतः सहजतया जगदुत्पत्तिप्रलययोर्वर्षाणां वेदोत्पत्तेश्च परिगणनं भवेत् । मन्वन्तरपर्य्यावृत्तौ सृष्टेर्नैमित्तिक-गुणानामपि पर्य्यावर्त्तनं किञ्चित् किञ्चिद्भवत्यतो मन्वन्तरसंज्ञा क्रियते । अत्रैवं संख्यातव्यम्–

एकं दशशतं चैव सहस्त्रमयुतं तथा । लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥१॥

वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शङ्खः पद्मं च सागरः । अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम् ॥२॥

इति सूर्यसिद्धान्तादिषु संख्यायते । अनया रीत्या वर्षादिगणना कार्येति । 'सहस्त्रस्य प्रमासि सहस्त्रस्य प्रतिमासि' ॥ य० अ० १५ । मं० ६५॥ 'सर्वं वै सहस्त्रं सर्वस्य दातासि' ॥ श० कां० ७। अ० ५ । **क० ब्रा० सर्वस्य जगतः सर्वमिति नामास्ति । कालस्य चानेन सहस्त्रमहायुगसंख्यया परिमितस्य दिनस्य नक्तस्य च ब्रह्माण्डस्य प्रमा परिमाणस्य कर्त्ता परमेश्वरोऽस्ति । मन्त्रस्यास्य सामान्यार्थे वर्त्तमानत्वात्सर्वमभिवदतीति । एवमेवाग्रेऽपि योजनीयम्। ज्योतिषशास्त्रे प्रतिदिनचर्याऽभिहिताऽऽर्य्यैः क्षणमारभ्य कल्पकल्पान्तस्य गणितविद्यया स्पष्टं परिगणनं कृतमद्यपर्यन्तमपि क्रियते प्रतिदिनमुच्चार्य्यते ज्ञायते चातः कारणादियं व्यवस्थैव सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकर्तुं योग्यास्ति नान्येति निश्चयः । कुतो ह्यार्यैर्नित्यम्–'ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमास-पक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्तेऽत्रेदं कृतं क्रियते च' इत्याबालवृद्धैः प्रत्यहं विदितत्वादितिहासस्यास्य सर्वत्रार्य्यावर्त्तदेशे वर्त्तमानत्वात् सर्वत्रैकरसत्वादशक्येयं व्यवस्था केनापि विचालयितुमिति विज्ञायताम् । अन्यद्युगव्याख्यानमग्रे करिष्यते तत्र द्रष्टव्यम् ।**

भाषार्थ–प्र०–वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष हो गये हैं ?

उ०–एक वृन्द छानवे करोड़ आठ लाख बावन हजार नव सौ छहत्तर अर्थात् (१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये हैं और यह संवत् ७७ सतहत्तरवां वर्त्त रहा है ।

प्र०–यह कैसे निश्चय हो कि इतने ही वर्ष वेद और जगत् की उत्पत्ति में बीत गये हैं ।

उ०–यह जो वर्तमान सृष्टि है, इसमें सातवें (७) वैवस्वत मनु का वर्तमान है, इससे पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं । स्वायम्भव १, स्वारोचिष २, औत्तमि ३, तामस ४, रैवत ५, चाक्षुष ६, ये छः तो बीत गये हैं और ७ सातवां वैवस्वत वर्त्त रहा है, और सावर्णि आदि ७ सात मन्वन्तर आगे भोगेंगे। ये सब मिलके १४ चौदह मन्वन्तर होते हैं । और एकहत्तर चतुर्युगियों का नाम मन्वन्तर धरा गया है । सो उसकी गणना इस प्रकार से है कि (१७२८०००) सत्रह लाख, अट्ठाईस हजार वर्षों का नाम सतयुग रक्खा है । (१२९६०००) बारह लाख छानवे हजार वर्षों का नाम त्रेता, (८६४०००) आठ लाख चौंसठ हजार वर्षों का नाम द्वापर और (४३२०००) चार लाख बत्तीस हजार वर्षों का नाम कलियुग रखा है । तथा आर्यों ने एक क्षण और निमेष से लेके एक वर्ष पर्यन्त भी काल की सूक्ष्म और स्थूल संज्ञा बांधी है । और इन चारों युगों के (४३२००००) तितालीस लाख बीस हजार वर्ष होते हैं, जिनका चतुर्युगी नाम है । एकहत्तर (७१) चतुर्युगियों के अर्थात् (३०६७२००००) तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्षों की एक मन्वन्तर संज्ञा की है और ऐसे ऐसे छः मन्वन्तर मिलकर अर्थात् (१८४०३२००००) एक अर्ब, चौरासी करोड़, तीन लाख, बीस हजार वर्ष हुए, और सातवें मन्वन्तर के भोग में यह (२८) अट्ठाईसवीं चतुर्युगी है । इस चतुर्युगी में कलियुग के

(४९७६) चार हजार, नव सौ, छहत्तर वर्षों का तो भोग हो चुका है और बाकी (४२७०२४) चार लाख, सत्ताईस हजार, चौबीस वर्षों का भोग होने वाला है । जानना चाहिए कि (१२०५३२९७६) बारह करोड़, पांच लाख बत्तीस हजार, नव सौ छहत्तर वर्ष तो वैवस्वतमनु के भोग हो चुके हैं और (१८६१८७०२४) अठारह करोड़, एकसठ लाख सतासी हजार, चौबीस वर्ष भोगने के बाकी रहे हैं । इनमें से यह वर्तमान वर्ष (७७) सतहत्तरवां है, जिसको आर्य लोग विक्रम का (१९३३) उन्नीस सौ तेतीसवां संवत् कहते हैं ।

जो पूर्व चतुर्युगी लिख आये हैं, उन एक हजार चतुर्युगियों की ब्राह्मदिन संज्ञा रखी है और उतनी ही चतुर्युगियों की रात्रिसंज्ञा जाननी चाहिए । सो सृष्टि की उत्पत्ति करके हजार चतुर्युगी पर्यन्त ईश्वर सब को बना रखता है, इसी का नाम 'ब्राह्मदिन' रखा है, और हजार चतुर्युगी पर्यन्त सृष्टि को मिटा के प्रलय अर्थात् कारण में लीन रखता है । उसका नाम 'ब्राह्मरात्रि' रखा है । अर्थात् सृष्टि के वर्तमान होने का नाम दिन और प्रलय होने का नाम रात्रि है । यह जो वर्तमान ब्राह्मदिन है इसके (१९६०८५२९७६) एक अर्ब, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हजार, नव सौ, छहत्तर वर्ष इस सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति में व्यतीत हुए हैं और (२३३३२२७०२४) दो अर्ब तैंतीस करोड़, बत्तीस लाख, सत्ताइस हजार, चौबीस वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं । इन में से अन्त का यह चौबीसवां वर्ष भोग रहा है । आगे आने वाले भोग के वर्षों में से एक-एक घटाते जाना और गत वर्षों में क्रम से एक एक वर्ष मिलाते जाना चाहिए, जैसे आज पर्यन्त घटाते बढ़ाते आए हैं ।

ब्राह्मदिन और ब्राह्मरात्रि अर्थात् ब्रह्म जो परमेश्वर उसने संसार के वर्त्तमान और प्रलय की संज्ञा की है इसीलिए इसका नाम ब्राह्मदिन है । इसी प्रकरण में मनुस्मृति के श्लोक साक्षी के लिए लिख चुके हैं सो देख लेना । इन श्लोकों में दैववर्षों की गणना की है, अर्थात् चारों युगों के बारह हजार (१२०००) वर्षों की 'दैवयुग' संज्ञा की है । इसी प्रकार असंख्यात मन्वन्तरों में कि जिनकी संख्या नहीं हो सकती अनेक वार सृष्टि हो चुकी है और अनेक बार होगी । सो इस सृष्टि को सदा से सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर सहज स्वभाव से रचता, पालन और प्रलय करता है और सदा ऐसे ही करेगा । क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति, वर्तमान, प्रलय और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों को मनुष्य लोग सुख से गिन लें, इसीलिए यह ब्राह्मदिन आदि संज्ञा बांधी है । और सृष्टि का स्वभाव नया पुराना प्रति मन्वन्तर में बदलता जाता है इसीलिये मन्वन्तर संज्ञा बांधी है । वर्त्तमान सृष्टि की कल्पसंज्ञा और प्रलय की विकल्पसंज्ञा की है ।

और इन वर्षों की गणना इस प्रकार से करनी चाहिए कि (एकं दशशतं चैव०) एक (१), (दश) (१०), शत (१००), हजार (१०००), दश हजार (१००००), लाख (१०००००), नियुत (१००००००), करोड़ (१००००००००) अर्बुद (१०००००००००), वृन्द (१००००००००००), खर्व (१०००००००००००), निखर्व (१००००००००००००), शङ्ख (१०००००००००००००), पद्म (१००००००००००००००), सागर (१०००००००००००००००), अन्त्य (१००००००००००००००००), मध्य (१०००००००००००००००००), और परार्द्ध्य (१००००००००००००००००००), और दश दश गुणा बढ़ाकर इसी गणित से सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष ग्रन्थों में गिनती की है ।[१]

(सहस्रस्य प्र०) सब संसार की सहस्र संज्ञा है तथा पूर्वोक्त ब्राह्मदिन और रात्रि की भी सहस्र संज्ञा की जाती है, क्योंकि यह मन्त्र सामान्य अर्थ में वर्त्तमान है । सो हे परमेश्वर ! आप इस हजार

१. कहीं कहीं इसी संख्या को १९ उन्नीस अङ्क पर्यन्त गिनते हैं सो यहां भी जान लेना ।

चतुर्युगी का दिन और रात्रि को प्रमाण अर्थात् निर्माण करने वाले हो । इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में यथावत् वर्षों की संख्या आर्य लोगों ने गिनी है सो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके आज पर्यन्त दिन-दिन गिनते और क्षण से लेके कल्पान्त की गणित विद्या को प्रसिद्ध करते चले आते हैं, अर्थात् परम्परा से सुनते-सुनाते लिखते-लिखाते और पढ़ते-पढ़ाते आज पर्यन्त हम लोग चले आते हैं । यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है, और सब मनुष्यों को इसी को ग्रहण करना योग्य है । क्योंकि आर्य लोग नित्यप्रति' 'ओं तत् सत्' परमेश्वर के इन तीन नामों का प्रथम उच्चारण करके कार्यों का आरम्भ और परमेश्वर का ही नित्य धन्यवाद करते चले आते हैं कि आनन्द में आज पर्यन्त परमेश्वर की सृष्टि और हम लोग बने हुए हैं, और बहीखाते की नाईं लिखते-लिखाते, पढ़ते-पढ़ाते चले आये हैं कि पूर्वोक्त ब्राह्मदिन के दूसरे प्रहर के ऊपर मध्याह्न के निकट दिन आया है और जितने वर्ष वैवस्वत मनु के भोग होने को बाकी हैं उतने ही मध्याह्न में बाकी रहे हैं, इसी लिये यह लेख है-(श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे०)

यह वैवस्वतमनु का वर्त्तमान है, इसके भोग में यह (२८) अट्ठाईसवां कलियुग है । कलियुग के प्रथम चरण का भोग हो रहा है तथा वर्ष, ऋतु, अयन, मास, पक्ष, दिन, नक्षत्र, मुहूर्त, लग्न और पल आदि समय में हमने फलाना काम किया था और करते हैं, अर्थात् जैसे विक्रम के संवत् १९३३ फाल्गुण मास, कृष्णपक्ष, षष्ठी, शनिवार के दिन चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में यह बात हमने लिखी है, इसी प्रकार से सब व्यवहार आर्य लोग बालक से वृद्ध पर्यन्त करते और जानते चले आये हैं । जैसे बहीखाते में मिती डालते हैं वैसे ही महीना और वर्ष बढ़ाते घटाते चले जाते हैं । इसी प्रकार आर्य लोग तिथिपत्र में भी वर्ष, मास और दिन आदि लिखते चले आते हैं । और यही इतिहास आज पर्यन्त सब आर्यावर्त्त देश में एक सा वर्त्तमान हो रहा है और सब पुस्तकों में भी इस विषय में एक ही प्रकार का लेख पाया जाता है, किसी प्रकार का इस विषय में विरोध नहीं है । इसीलिए इसको अन्यथा करने में किसी का सामर्थ्य नहीं हो सकता । क्योंकि जो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके बराबर मिती वार लिखते न आते तो इस गिनती का हिसाब ठीक-ठीक आर्य लोगों को भी जानना कठिन होता, अन्य मनुष्यों का तो क्या ही कहना है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि सृष्टि के आरम्भ से लेके आज पर्यन्त आर्य लोग ही बड़े बड़े विद्वान् और सभ्य होते चले आये हैं ।

जब जैन और मुसलमान आदि लोग इस देश के इतिहास और विद्यापुस्तकों का नाश करने लगे तब आर्य लोगों ने सृष्टि के गणित का इतिहास कण्ठस्थ कर लिया और जो पुस्तक ज्योतिषशास्त्र के बच गए हैं उनमें और उनके अनुसार जो वार्षिक पञ्चाङ्गपत्र बनते जाते हैं इनमें भी मिती से मिती बराबर लिखी चली आती है, इसको अन्यथा कोई नहीं कर सकता । यह वृत्तान्त इतिहास का इसलिये है कि पूर्वापर काल का प्रमाण यथावत् सब को विदित रहे और सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय तथा वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की गिनती में किसी प्रकार का भ्रम किसी को न हो, सो यह बड़ा उत्तम काम है । इसको सब लोग यथावत् जान लेवें । परन्तु इस उत्तम व्यवहार को लोगों ने टका कमाने के लिए बिगाड़ रखा है, यह शोक की बात है । और टके के लोभ ने भी जो इसके पुस्तकव्यवहार को बना रक्खा, नष्ट न होने दिया । यह बड़े हर्ष की बात है । जो चारों युगों के चार भेद और उनके वर्षों की घट बढ़ संख्या क्यों हुई है, इसकी व्याख्या आगे करेंगे, वहां देख लेना चाहिए, यहां इसका प्रसंग नहीं है इसलिए नहीं लिखा ।

एतावता कथनेनैवाध्यापकैर्विलसनमोक्षमूलराद्यभिधैर्यूरोपाख्यखण्डस्थैर्मनुष्यरचितो वेदोऽस्ति

श्रुतिर्नास्तीति यदुक्तं, यच्चोक्तं चतुर्विंशतिरेकोनत्रिंशत्त्रिंशदेकत्रिंशच्च शतानि वर्षाणि वेदोत्पत्तौ व्यतीतानीति तत्सर्वं भ्रममूलमस्तीति वेद्यम् । तथैव प्राकृतभाषया व्याख्यानकारिभिरप्येवमुक्तं तदपि भ्रान्तमेवास्तीति च ॥

इति वेदोत्पत्तिविचार:

भाषार्थ–इससे जो अध्यापक विलसन साहेब और अध्यापक मोक्षमूलर साहेब आदि यूरोपखण्डवासी विद्वानों ने बात कही है कि–वेद मनुष्य के रचे हैं किन्तु श्रुति नहीं है, उनकी यह बात ठीक नहीं है । और दूसरी यह है–कोई कहता है (२४००) चौबीस सौ वर्ष वेदों की उत्पत्ति को हुए, कोई (२९००) उनतीस सौ वर्ष, कोई (३०००) तीन हजार वर्ष और कोई कहता है (३१००) एकतीस सौ वर्ष वेदों की उत्पन्न हुए बीते हैं, उनकी यह भी बात झूठी है । क्योंकि उन लोगों ने हम आर्य लोगों की नित्यप्रति की दिनचर्या का लेख और सङ्कल्प पठनविद्या को भी यथावत् न सुना और न विचारा है, नहीं तो इतने ही विचार से यह भ्रम उन को नहीं होता । इससे यह जानना अवश्य चाहिए कि वेदों की उत्पत्ति परमेश्वर से ही हुई है, और जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदों और जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं । इससे क्या सिद्ध हुआ कि जिन जिन ने अपनी अपनी देश भाषाओं में अन्यथा व्याख्यान वेदों के विषय में किया है, उन उन का भी व्याख्यान मिथ्या है । क्योंकि जैसा प्रथम लिख आये हैं जब पर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्त्तमान रहेंगे ।।

इति वेदोत्पत्तिविचार: ।।

अथ वेदानां नित्यत्वविचारः

Learn it

ईश्वरस्य सकाशाद् वेदानामुत्पत्तौ सत्यां स्वतो नित्यत्वमेव भवति, तस्य सर्वसामर्थ्यस्य नित्यत्वात् ।

भाषार्थ—अब वेदों के नित्यत्व का विचार किया जाता है सो वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं इससे वे स्वतः नित्यस्वरूप ही हैं, क्योंकि ईश्वर का सब सामर्थ्य नित्य ही है ।

अत्र केचिदाहुः—न वेदानां शब्दमयत्वान्नित्यत्वं सम्भवति । शब्दोऽनित्यः कार्य्यत्वात्। घटवत् । यथा घटः कृतोऽस्ति तथा शब्दोऽपि । तस्माच्छब्दानित्यत्वे वेदानामप्यनित्यत्वं स्वीकार्य्यम् ।

मैवं मन्यताम् । शब्दो द्विविधो नित्यकार्यभेदात् । ये परमात्मज्ञानस्थाः शब्दार्थसम्बन्धाः सन्ति ते नित्या भवितुमर्हन्ति । येऽस्मदादीनां वर्त्तन्ते ते तु कार्य्याश्च । कुतः ? यस्य ज्ञानक्रिये नित्ये स्वभावसिद्धे अनादी स्तस्तस्य सर्वं सामर्थ्यमपि नित्यमेव भवितुमर्हति। तद्विद्यामयत्वाद् वेदानामनित्यत्वं नैव घटते ।

भाषार्थ—प्र०—इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसी शङ्का करते हैं कि वेदों में शब्द, छन्द, पद और वाक्यों के योग होने से नित्य नहीं हो सकते । जैसे विना बनाने से घड़ा नहीं बनता, इसी प्रकार से वेदों को भी किसी ने बनाया होगा । क्योंकि बनाने के पहले नहीं थे और प्रलय में भी न रहेंगे, इससे वेदों को नित्य मानना ठीक नहीं है ।

उ०—ऐसा आपको कहना उचित नहीं, क्योंकि शब्द दो प्रकार का होता है—एक नित्य और दूसरा कार्य इनमें से जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध परमेश्वर के ज्ञान में हैं वे सब नित्य ही होते हैं, और जो हम लोगों की कल्पना से उत्पन्न होते हैं वे कार्य होते हैं । क्योंकि जिसका ज्ञान और क्रिया स्वभाव से सिद्ध और अनादि हैं उसका सब सामर्थ्य भी नित्य ही होता है । इससे वेद भी उसके विद्यास्वरूप होने से नित्य ही हैं क्योंकि ईश्वर की विद्या अनित्य कभी नहीं हो सकती ।

किं च भोः ! सर्वस्यास्य जगतो विभागं प्राप्तस्य कारणरूपस्थितौ सर्वस्थूलकार्य्याभावे पठनपाठनपुस्तकानामभावात् कथं वेदानां नित्यत्वं स्वीक्रियते ?

अत्रोच्यते—इदं तु पुस्तकपत्रमसीपदार्थादिषु घटते, तथास्मत्क्रियापक्षे च नेतरस्मिन् । अतः कारणादीश्वरविद्यामयत्वेन वेदानां नित्यत्वं वयं मन्यामहे । किं च, न पठनपाठन-पुस्तकानित्यत्वे वेदानित्यत्वं जायते । तेषामीश्वरज्ञानेन सह सदैव विद्यमानत्वात् । यथास्मिन् कल्पे वेदेषु शब्दाक्षरार्थ-सम्बन्धाः सन्ति तथैव पूर्वमासन्नग्रे भविष्यन्ति च । कुतः, ईश्वरविद्याया नित्यत्वादव्यभिचारित्वाच्च । अत एवेदमुक्तमृग्वेदे—

Learn it

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् इति ।

अस्यायमर्थः—सूर्यचन्द्रग्रहणमुपलक्षणार्थं, यथा पूर्वकल्पे सूर्यचन्द्रादिरचनं तस्य ज्ञानमध्ये ह्यासीत्तथैव तेनास्मिन् कल्पेऽपि रचनं कृतमस्तीति विज्ञायते । कुतः ईश्वरज्ञानस्य वृद्धिक्षय-

विपर्ययाभावात् । एवं वेदेष्वपि स्वीकार्य्यं, वेदानां तेनैव स्वविद्यातः सृष्टत्वात् ।

भाषार्थ–प्र०–जब सब जगत् के परमाणु अलग अलग होके कारणरूप हो जाते हैं तब जो कार्यरूप सब स्थूल जगत् है उसका अभाव हो जाता है, उस समय वेदों के पुस्तकों का भी अभाव हो जाता है, फिर वेदों को नित्य क्यों मानते हो ?

उ०–यह बात पुस्तक, पत्र, मसी और अक्षरों की बनावट आदि पक्ष में घटती है तथा हम लोगों के क्रियापक्ष में भी बन सकती है, वेदपक्ष में नहीं घटती, क्योंकि वेद तो शब्द, अर्थ और सम्बन्धस्वरूप ही हैं, मसी, कागज, पत्र, पुस्तक और अक्षरों की बनावटरूप नहीं हैं । यह जो मसी आदि द्रव्य और लेखनादि क्रिया है सो मनुष्यों की बनाई है, इससे अनित्य है । और ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहने से वेदों को हम लोग नित्य मानते हैं । इससे क्या सिद्ध हुआ कि पढ़ना-पढ़ाना और पुस्तक के अनित्य होने से वेद अनित्य नहीं हो सकते, क्योंकि वे बीजाङ्कुर न्याय से ईश्वर के ज्ञान में नित्य वर्त्तमान रहते हैं । सृष्टि की आदि में ईश्वर से वेदों की प्रसिद्धि होती है और प्रलय में जगत् के नहीं रहने से उनकी अप्रसिद्धि होती है, इस कारण से वेद नित्यस्वरूप ही बने रहते हैं ।

जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द, अक्षर, अर्थ और सम्बन्ध वेदों में हैं इसी प्रकार से पूर्वकल्प में थे और आगे भी होंगे, क्योंकि जो ईश्वर की विद्या है सो नित्य एक ही रस बनी रहती है । उनके एक अक्षर का भी विपरीतभाव कभी नहीं होता । सो ऋग्वेद से लेके चारों वेदों की संहिता अब जिस प्रकार की हैं कि इनमें शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्त्तमान है इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान नित्य है, उसकी वृद्धि, क्षय और विपरीतता कभी नहीं होती । इस कारण से वेदों को नित्यस्वरूप ही मानना चाहिए ।

अत्र वेदानां नित्यत्वे व्याकरणशास्त्रादीनां साक्ष्यर्थं प्रमाणानि लिख्यन्ते । तत्राह महाभाष्यकारः पतञ्जलिमुनिः–

'नित्याः शब्दा नित्येषु शब्देषु कूटस्थैरविचालिभिर्वर्णैर्भवितव्यमनपायोपजनविकारिभिरिति।
इदं वचनं प्रथमाह्निकमारभ्य बहुषु स्थलेषु व्याकरणमहाभाष्येऽस्ति । तथा–
'श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ।'
इदम् 'अइउण्' सूत्रभाष्ये चोक्तमिति । अस्यायमर्थः

वैदिका लौकिकाश्च सर्वे शब्दा नित्याः सन्ति । कुतः ? शब्दानां मध्ये कूटस्था विनाशरहिता अचला अनपाया अनुपजना अविकारणो वर्णाः सन्त्यतः । अपायो लोपो निवृत्तिरग्रहणम्, उपजन आगमः, विकार आदेशः, एते न विद्यन्ते येषु शब्देषु तस्मान्नित्याः शब्दाः ।

भाषार्थ–यह जो वेदों के नित्य होने का विषय है इसमें व्याकरणादि शास्त्रों का प्रमाण साक्षी के लिए लिखते हैं । इनमें से जो व्याकरण शास्त्र है सो संस्कृत और भाषाओं के सब शब्दविद्या का मुख्य मूल प्रमाण है । उसके बनाने वाले महामुनि पाणिनि और पतञ्जलि हैं । उनका ऐसा मत है कि–'सब शब्द नित्य हैं, क्योंकि इन शब्दों में जितने अक्षरादि अवयव हैं वे सब कूटस्थ अर्थात् विनाशरहित हैं, और वे पूर्वापर विचलते भी नहीं, उनका अभाव वा आगम कभी नहीं होता ।' इससे वैदिक अर्थात् जो वेद के शब्द और वेदों से जो शब्द लोक में आये हैं वे लौकिक कहाते हैं, वे भी सब नित्य ही होते हैं क्योंकि उन शब्दों के मध्य में सब वर्ण अविनाशी और अचल हैं, तथा इनमें लोप आगम और विकार नहीं बन सकते, इस कारण से पूर्वोक्त शब्द नित्य हैं ।

ननु गणपाठाष्टाध्यायीमहाभाष्येष्वपायादयो विधीयन्ते पुनरेतत्कथं सङ्गच्छते ? इत्येवं प्राप्ते ब्रूते महाभाष्यकारः–

'सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः । एकदेशविकारे हि नित्यत्वं नोपपद्यते ॥१॥

'दाधा घ्वदाप्' इत्यस्य सूत्रस्योपरि महाभाष्यवचनम् । अस्यायमर्थः–

सर्वे सङ्घाताः सर्वेषां पदानां स्थान आदेशा भवन्ति अर्थाच्छब्दसङ्घातान्तराणां स्थानेष्वन्ये शब्दसङ्घाताः प्रयुज्यन्ते । तद्यथा–वेदपार । गम् ड । सुँ । भू । शप् । तिप् । इत्येतस्य वाक्यसमुदायस्य स्थाने वेदपारगोऽभवदितीदं समुदायान्तरं प्रयुज्यते । अस्मिन् प्रयुक्तसमुदाये 'गम् ड सुँ शप् तिप् इत्येतेषाम् 'अम् ड् उँ श् प् इ प्' इत्येतेऽपयन्तीति केषाञ्चिद् बुद्धिर्भवति सा भ्रममूलैवास्ति । कुतः? शब्दानामेकदेशविकारे चेत्युपलक्षणात् । नैव शब्दस्यैकदेशापाय एकदेशोपजन एकदेशविकारिणि सति दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेराचार्य्यस्य मते शब्दानां नित्यत्वमुपपन्नं भवत्यतः । तथैवाडागमो, भू इत्यस्य स्थाने भो इति विकारे चैवं सङ्गतिः कार्य्येति ।

(श्रोत्रोपलब्धिरिति) श्रोत्रेन्द्रियेण ज्ञानं यस्य, बुद्ध्या नितरां ग्रहीतुं योग्य, उच्चारणेनाभिप्रकाशितो यो, यस्याकाशो देशोऽधिकरणं वर्त्तते, स शब्दो भवतीति बोध्यम् । अनेन शब्दलक्षणेनापि शब्दो नित्य एवास्तीत्यवगम्यते । कथम् ? उच्चारणश्रवणादिप्रयत्नक्रियायाः क्षणप्रध्वंसित्वात् । 'एकैकवर्णवर्तिनी वाक्' इति महाभाष्यप्रामाण्यात् । प्रतिवर्णं वाक्क्रिया परिणमते, अतस्तस्या एवानित्यत्वं गम्यते, न च शब्दस्येति ।

भाषार्थ–प्र०–गणपाठ अष्टाध्यायी और महाभाष्य में अक्षरों के लोप आगम और विकार आदि कहे हैं, फिर शब्दों का नित्यत्व कैसे हो सकता है ?

इस प्रश्न का उत्तर महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि देते हैं कि–शब्दों के समुदायों के स्थानों में अन्य शब्दों के समुदायों का प्रयोगमात्र होता है । जैसे 'वेदपार गम् ड् सुँ भू शप् तिप्' इस पदसमुदाय वाक्य के स्थान में 'वेदपारगोऽभवत्' इस समुदायान्तर का प्रयोग किया जाता है । इसमें किसी पुरुष की ऐसी बुद्धि होती है कि अम् ड् उँ श् प् इ प् इनकी निवृत्ति हो जाती है, सो उसकी बुद्धि में भ्रममात्र है, क्योंकि शब्दों के समुदाय के स्थानों में दूसरे शब्दों के समुदायों के प्रयोग किये जाते हैं । सो यह मत दाक्षी के पुत्र पाणिनि मुनि जी का है, जिनने अष्टाध्यायी आदि व्याकरण के ग्रन्थ किये हैं । सो मत इस प्रकार से है कि शब्द नित्य ही होते हैं, तथा 'कान से सुन के जिनका ग्रहण होता है, बुद्धि से जो जाने जाते हैं, जो वाक् इन्द्रिय से उच्चारण करने से प्रकाशित होते हैं, और जिनका निवास का स्थान आकाश है उनको शब्द कहते हैं । क्योंकि जो उच्चारण और श्रवणादि हम लोगों की क्रिया है उसके क्षणभङ्ग होने से अनित्य गिनी जाती है । इससे शब्द अनित्य नहीं होते, क्योंकि यह जो हम लोगों की वाणी है, वही वर्ण वर्ण के प्रति अन्य अन्य होती जाती है परन्तु शब्द तो सदा अखण्ड एकरस ही बने रहते हैं ।

ननु च भोः । शब्दोऽप्युपरतागतो भवति । उच्चारित उपागच्छति, अनुच्चारितोऽनागतो भवति, वाक्क्रियावत् । पुनस्तस्य कथं नित्यत्वं भवेत् ।

अत्रोच्यते–नाकाशवत् पूर्वस्थितस्य शब्दस्य साधनाभावादभिव्यक्तिर्भवति, किन्तु तस्य प्राणवाक्क्रियाभिव्यक्तिश्च । तद्यथा गौरित्यत्र यावद्वाग्गकारेऽस्ति न तावदौकारे,

यावदौकारे न तावद्विसर्जनीये । एवं वाकक्रियोच्चारणस्यापायोपजनौ भवतः न च शब्दस्याखण्डैकरसस्य, तस्य सर्वत्रोपलब्धत्वात् । यत्र खलु वायु वाक्क्रिये न भवत-स्तत्रोच्चारणश्रवणे अपि न भवतः । अतः शब्दस्त्वाकाशवदेव सदा नित्योऽस्तीत्यादि-व्याकरणमतेन सर्वेषां शब्दानां नित्यत्वमस्ति, किमुत वैदिकानामिति ।

भाषार्थ–प्र०–शब्द भी उच्चारण किये के पश्चात् नष्ट हो जाता है और उच्चारण के पूर्व सुना नहीं जाता है, जैसे उच्चारण क्रिया अनित्य है, वैसे ही शब्द भी अनित्य हो सकता है । फिर शब्दों को नित्य क्यों मानते हो ?

उ०–शब्द तो आकाश की नाईं सर्वत्र एकरस भर रहे हैं, परन्तु जब उच्चारणक्रिया नहीं होती, तब प्रसिद्ध सुनने में नहीं आते । जब प्राण और वाणी की क्रिया से उच्चारण किये जाते हैं, तब शब्द प्रसिद्ध होते हैं । जैसे 'गौः' इसके उच्चारण में जब पर्यन्त उच्चारण क्रिया गकार में रहती है, तब पर्यन्त औकार में नहीं, जब औकार में है तब गकार और विसर्जनीय में नहीं रहती । इसी प्रकार वाणी की क्रिया की उत्पत्ति और नाश होता है, शब्दों का नहीं । किन्तु आकाश में शब्द की प्राप्ति होने से शब्द तो अखण्ड एकरस सर्वत्र भर रहे हैं, परन्तु जब पर्यन्त वायु और वाक् इन्द्रिय की क्रिया नहीं होती, तब पर्यन्त शब्दों का उच्चारण और श्रवण भी नहीं होता । इससे यह सिद्ध हुआ कि शब्द आकाश की नाईं नित्य ही हैं । जब व्याकरण शास्त्र के मत से सब शब्द नित्य होते हैं तो वेदों के शब्दों की कथा तो क्या ही कहनी है, क्योंकि वेदों के शब्द तो सब प्रकार से नित्य ही बने रहते हैं ।

Learn it

एवं जैमिनिमुनिनापि शब्दस्य नित्यत्वं प्रतिपादितम्–
'नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्'॥ पूर्वमीमांसा अ० १ । पा० १ । सू० १८॥

अस्यायमर्थः–'तु' शब्देनानित्यशङ्का निवार्य्यते । विनाशरहितत्वाच्छब्दो नित्योऽस्ति कस्माद् दर्शनस्य परार्थत्वात् । दर्शनस्योच्चारणस्य परस्यार्थस्य ज्ञापनार्थत्वात्, शब्दस्यानित्यत्वं नैव भवति । अन्यथाऽयं गोशब्दार्थोऽस्तीत्यभिज्ञाऽनित्येन शब्देन भवितुमयोग्योऽस्ति । नित्यत्वे सति ज्ञाप्यज्ञापकयोर्विद्यमानत्वात् सर्वमेतत् सङ्गतं स्यात् । अतश्चैकमेव गोशब्दं युगपदनेकेषु स्थलेष्वनेक उच्चारका उपलभन्ते । पुनः पुनस्तमेव चेति । एवं जैमिनिना शब्दनित्यत्वेऽनेके हेतवः प्रदर्शिताः ।

भाषार्थ–इसी प्रकार जैमिनि मुनि ने भी शब्द को नित्य माना है–(नित्यस्तु०) शब्द में जो अनित्य होने की शङ्का आती है, उसका 'तु' शब्द से निवारण किया है । शब्द नित्य ही हैं, अर्थात् नाशरहित हैं, क्योंकि उच्चारणक्रिया से जो शब्द का श्रवण होता है सो अर्थ के जनाने ही के लिए है, इससे शब्द अनित्य नहीं हो सकता । जो शब्द का उच्चारण किया जाता है, उसकी ही प्रत्यभिज्ञा होती है कि श्रोत्रद्वारा ज्ञान के बीच में वही शब्द स्थिर रहता है, फिर उसी शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है जो शब्द अनित्य होता तो अर्थ का ज्ञान कौन कराता, क्योंकि वह शब्द ही नहीं रहा, फिर अर्थ को कौन जनावे । और जैसे अनेक देशों में अनेक पुरुष एक काल में ही एक गो शब्द का उच्चारण करते हैं, इसी प्रकार उसी शब्द का उच्चारण वारंवार भी होता है, इस कारण से भी शब्द नित्य है । जो शब्द अनित्य होता तो यह व्यवस्था कभी नहीं बन सकती । सो जैमिनि मुनि ने इस प्रकार के अनेक हेतुओं से पूर्वमीमांसा शास्त्र में शब्द को नित्य सिद्ध किया है ।

अन्यच्च वैशेषिकसूत्रकारः कणादमुनिरप्यत्राह–

'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥' वैशेषिके अ० १ । सू० ३॥

अस्यायमर्थः–तद्वचनात्तयोर्धर्मेश्वरयोर्वचनाद्धर्मस्यैव कर्त्तव्यतया प्रतिपादनादीश्वरेणै-वोक्तत्वाच्चाम्नायस्य वेदचतुष्टयस्य प्रामाण्यं सर्वैर्नित्यत्वेन स्वीकार्यम् ।

भाषार्थ–इसी प्रकार वैशेषिक शास्त्र में कणाद मुनि ने भी कहा है–(तद्वचना०) वेद ईश्वरोक्त हैं, इनमें सत्यविद्या और पक्षपात रहित धर्म का ही प्रतिपादन है, इससे चारों वेद नित्य हैं । ऐसा ही सब मनुष्यों का मानना उचित है क्योंकि ईश्वर नित्य है । इससे उसकी विद्या भी नित्य है ।

तथा स्वकीयन्यायशास्त्रे गोतममुनिरप्यत्राह–

'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ॥' अ० २ । आ० १ । सूत्र ६७ ।

अस्यायमर्थः–तेषां वेदानां नित्यानामीश्वरोक्तानां प्रामाण्यं सर्वैः स्वीकार्य्यम् । कुतः? आप्तप्रामाण्यात् । धर्मात्मभिः कपटछलादिदोषरहितैर्दयालुभिः सत्योपदेष्टृभिर्विद्यापारगैर्महा-योगिभिः सर्वैर्ब्रह्मादिभिराप्तैर्वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमतः । किंवत् ?, मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवत्। यथा सत्यपदार्थविद्याप्रकाशकानां मन्त्राणां विचाराणां सत्यत्वेन प्रामाण्यं भवति, यथा चायुर्वेदोक्तस्यैकदेशोक्तौषधसेवनेन रोगनिवृत्त्या तद्भिन्नस्यापि भागस्य तादृशस्य प्रामाण्यं भवति, तथा वेदोक्तार्थस्यैकदेशप्रत्यक्षेणेतरस्यादृष्टार्थविषयस्य वेदभागस्यापि प्रामाण्य-मङ्गीकार्य्यम् ।

एतत्सूत्रस्योपरि भाष्यकारेण वात्स्यायनमुनिनाप्येवं प्रतिपादितम्–

"द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुमानम् । य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामित्यायुर्वेदप्रामाण्यवद्वेदप्रामाण्यमनुमातव्यमिति । नित्यत्वाद्वेदवाक्यानां प्रमाणत्वे तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यादित्युक्तम् ।"

अस्यायमभिप्रायः–यथाप्तोपदेशस्य शब्दस्य प्रामाण्यं भवति तथा सर्वथाप्तेनेश्वरेणोक्तानां वेदानां सर्वैराप्तैः प्रामाण्येनाङ्गीकृतत्वाद्वेदाः प्रमाणमिति बोध्यम् । अत ईश्वरविद्यामयत्वाद्वेदानां नित्यत्वमेवोपपन्नं भवतीति दिक् ।

भाषार्थ–वैसे ही न्यायशास्त्र में गोतम मुनि भी शब्द को नित्य कहते हैं, (मन्त्रायु०) वेदों को नित्य ही मानना चाहिए, क्योंकि सृष्टि के आरम्भ से लेके आज पर्यन्त ब्रह्मादि जितने आप्त होते आये हैं वे सब वेदों को नित्य ही मानते आये हैं । उन आप्तों का अवश्य ही प्रमाण करना चाहिए। क्योंकि आप्त लोग वे होते हैं जो धर्मात्मा, कपट छलादि दोषों से रहित, सब विद्याओं से युक्त, महायोगी और सब मनुष्यों के सुख होने के लिए सत्य का उपदेश करने वाले हैं, जिनमें लेशमात्र भी पक्षपात वा मिथ्याचार नहीं होता । उन्होंने वेदों का यथावत् नित्य गुणों से प्रमाण किया है जिन्होंने आयुर्वेद को बनाया है । जैसे आयुर्वेद वैद्यकशास्त्र के एकदेश में कहे औषध और पथ्य के सेवन करने से रोग की निवृत्ति से सुख प्राप्त होता है, जैसे उसके एकदेश के कहे के सत्य होने से उसके दूसरे भाग का भी प्रमाण होता है इसी प्रकार वेदों का भी प्रमाण करना सब मनुष्यों को उचित है । क्योंकि वेद के एकदेश में कहे अर्थ का सत्यापन विदित होने से उस से भिन्न जो वेदों के भाग हैं, कि जिनका अर्थ प्रत्यक्ष न हुआ हो, उनका भी नित्य प्रमाण अवश्य करना चाहिए, क्योंकि आप्त पुरुष का उपदेश मिथ्या नहीं हो सकता ।

(मन्त्रायु०) इस सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने वेदों का नित्य होना स्पष्ट प्रतिपादन किया है कि जो आप्त लोग हैं वे वेदों के अर्थ को देखने दिखाने और जनाने वाले हैं जो जो उस उस मन्त्र के अर्थ के द्रष्टा वक्ता होते हैं, वे ही आयुर्वेद आदि के बनाने वाले हैं । जैसे उनका कथन आयुर्वेद में सत्य है वैसे ही वेदों के नित्य मानने का उनका जो व्यवहार है सो भी सत्य ही है; ऐसा मानना चाहिए। क्योंकि जैसे आप्तों के उपदेश का प्रमाण अवश्य होता है, वैसे ही सब आप्तों का भी जो परम आप्त सब का गुरु परमेश्वर है, उसके किये वेदों का भी नित्य होने का प्रमाण अवश्य ही करना चाहिए ।

अत्र विषये योगशास्त्रे पतञ्जलिमुनिरप्याह–

'स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥'

पातञ्जलयोगशास्त्रे अ० १ । पा० १ । सू० २६॥

यः पूर्वेषां सृष्ट्यादावुत्पन्नानामग्निवाय्वादित्याङ्गिरोब्रह्मादीनां प्राचीनानामस्मदादीना-मिदानीन्तनानामग्रे भविष्यतां च सर्वेषामेव ईश्वर एव गुरुरस्ति । गृणाति वेदद्वारोपदिशति सत्यानर्थान् स गुरुः । स च सर्वदा नित्योऽस्ति, तत्र कालगतेरप्रचारत्वात् । न स ईश्वरो ह्यविद्यादिक्लेशैः पापकर्मभिस्तद्वासनया च कदाचिद्युक्तो भवति । यस्मिन् निरतिशयं नित्यं स्वाभाविकं ज्ञानमस्ति तदुक्तत्वाद्वेदानामपि सत्यार्थवत्त्वनित्यत्वे वेद्ये इति ।

भाषार्थ–इस विषय में योगशास्त्र के कर्त्ता पतञ्जलि मुनि भी वेदों को नित्य मानते हैं, (स एष०) जो कि प्राचीन अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि पुरुष सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुए थे, उनसे लेके हम लोग पर्यन्त और हम से आगे जो होने वाले हैं, इन सब का गुरु परमेश्वर ही है, क्योंकि वेद द्वारा सत्य अर्थों का उपदेश करने से परमेश्वर का नाम गुरु है । सो ईश्वर नित्य ही है, क्योंकि ईश्वर में क्षणादि काल की गति का प्रचार ही नहीं है, और वह अविद्या आदि क्लेशों से और पापकर्म तथा उनकी वासनाओं के भोगों से अलग है । जिसमें अनन्त विज्ञान सर्वदा एकरस बना रहता है, उसी के रचे वेदों का भी सत्यार्थपना और नित्यपना भी निश्चित है, ऐसा ही सब मनुष्यों को जानना चाहिये ।

एवमेव स्वकीयसांख्यशास्त्रे पञ्चमाध्याये कपिलाचार्योऽप्यत्राह–

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ॥ सू० ५१॥

अस्यायमर्थः–वेदानां निजशक्त्यभिव्यक्तेः पुरुषसहचारिप्रधानसामर्थ्यात् प्रकटत्वात्स्वतः-प्रामाण्यनित्यत्वे स्वीकार्य्ये इति ।

भाषार्थ–इसी प्रकार से सांख्यशास्त्र में कपिलाचार्य भी कहते हैं–(निज०) परमेश्वर की (निज) अर्थात् स्वाभाविक जो विद्या शक्ति है उससे प्रकट होने से वेदों का नित्यत्व और स्वतः प्रामाण्य सब मनुष्यों को स्वीकार करना चाहिए ।

अस्मिन् विषये स्वकीयवेदान्तशास्त्रे कृष्णद्वैपायनो व्यासमुनिरप्याह–

शास्त्रयोनित्वात् ॥ अ० १ । पा० १ । सू० ३॥

अस्यायमर्थः–'ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत्सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म । न हीदृशस्य शास्त्रस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति । यद्यद्विस्तारार्थं शास्त्रं यस्मात्पुरुषविशेषात्सम्भवति, यथा

व्याकरणादिपाणिन्यादेर्ज्ञैयैकदेशार्थमपि स ततोऽप्यधिकतरविज्ञान इति सिद्धं लोके किमु वक्तव्यमितीदं वचनं शङ्कराचार्येणास्य सूत्रस्योपरि स्वकीयव्याख्याने गदितम् । अतः किमागतं, सर्वज्ञस्येश्वरस्य शास्त्रमपि नित्यं सर्वार्थज्ञानयुक्तं च भवितुमर्हति ।

अन्यच्च तस्मिन्नेवाध्याये–

अत एव च नित्यत्वम् ॥ पा० ३। सू० २९॥

अस्यायमर्थः–अत ईश्वरोक्तत्वान्नित्यधर्मकत्वाद् वेदानां स्वतः प्रामाण्यं सर्वविद्यावत्त्वं सर्वेषु कालेष्वव्यभिचारित्वान्नित्यत्वं च सर्वैर्मनुष्यैर्मन्तव्यमिति सिद्धम् । न वेदस्य प्रामाण्यसिद्ध्यर्थमन्यत्प्रमाणं स्वीक्रियते । किन्त्वेतत्साक्षिवद्विज्ञेयम् । वेदानां स्वतःप्रमाणत्वात् सूर्यवत्। यथा सूर्यः स्वप्रकाशः सन् संसारस्थान्महतोऽल्पाँश्च पर्वतादीन् त्रसरेण्वन्तान् पदार्थान् प्रकाशयति तथा वेदोऽपि स्वयं स्वप्रकाशः सन् सर्वा विद्याः प्रकाशयतीत्यवधेयम् ।

भाषार्थ–इसी प्रकार से वेदान्तशास्त्र में वेदों के नित्य होने के विषय में व्यास जी ने भी लिखा है, (शास्त्र०) । इस सूत्र के अर्थ में शङ्कराचार्य ने भी वेदों को नित्य मान के व्याख्यान किया है कि–'ऋग्वेदादि जो चारों वेद हैं, वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं, सूर्य के समान सब सत्य अर्थों के प्रकाश करने वाले हैं । उनका बनाने वाला सर्वज्ञादि गुणों से युक्त परब्रह्म है, क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव सर्वज्ञगुणयुक्त इन वेदों को बना सके, ऐसा सम्भव कभी नहीं हो सकता । किन्तु वेदार्थविस्तार के लिए किसी जीवविशेष पुरुष से अन्य शास्त्र बनाने का सम्भव होता है । जैसे पाणिनि आदि मुनियों ने व्याकरणादि शास्त्रों को बनाया है । उन में विद्या के एक एक देश का प्रकाश किया है । सो भी वेदों के आश्रय से बना सके हैं । और जो सब विद्याओं से युक्त वेद हैं, उनको सिवाय परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं बना सकता, क्योंकि परमेश्वर से भिन्न सब विद्याओं में पूर्ण कोई भी नहीं है । किञ्च परमेश्वर के बनाये वेदों के पढ़ने, विचारने और उसी के अनुग्रह से मनुष्यों को यथाशक्ति विद्या का बोध होता है, अन्यथा नहीं' ऐसा शङ्कराचार्य ने भी कहा है । इससे क्या आया कि वेदों के नित्य होने में सब आर्य लोगों की साक्षी है । और यह भी कारण है कि जो ईश्वर नित्य और सर्वज्ञ है उसके किये वेद भी नित्य और सर्वज्ञ होने के योग्य हैं । अन्य का बनाया ऐसा ग्रन्थ कभी नहीं हो सकता ।

(अत एव०) इस सूत्र से भी यही आता है कि वेद नित्य हैं, और सब सज्जन लोगों को भी ऐसा ही मानना उचित है । तथा वेदों के प्रमाण और नित्य होने में अन्य शास्त्रों के प्रमाणों को साक्षी के समान जानना चाहिए, क्योंकि वे अपने ही प्रमाण से नित्य सिद्ध हैं । जैसे सूर्य के प्रकाश में सूर्य का ही प्रमाण है, अन्य का नहीं, और जैसे सूर्य प्रकाशस्वरूप है, पर्वत से लेके त्रसरेणु पर्यन्त पदार्थों का प्रकाश करता है, वैसे वेद भी स्वयंप्रकाश हैं और सब सत्यविद्याओं का भी प्रकाश कर रहे हैं ।

अत एव स्वयमीश्वरः स्वप्रकाशितस्य वेदस्य स्वस्य च सिद्धिकरं प्रमाणमाह–

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ य० अ० ४० । मं० ८ ॥

अस्यायमभिप्रायः–यः पूर्वोक्तः सर्वव्यापकत्वादिविशेषणयुक्त ईश्वरोऽस्ति, (स

पर्य्यगात्) परितः सर्वतोऽगात् गतवान् प्राप्तवानस्ति, नैवैकः परमाणुरपि तद्व्याप्त्या विनास्ति, (शुक्रं) तद्ब्रह्म सर्वजगत्कर्त्तृवीर्य्यवदनन्तबलवदस्ति, (अकायं) तत्स्थूलसूक्ष्म-कारणशरीरत्रयसम्बन्धरहितम्, (अव्रणं) नैवैतस्मिँश्छिद्रं कर्त्तुं परमाणुरपि शक्नोति, अत एव छेदरहितत्वादक्षतम्, (अस्नाविरं) तन्नाडीसम्बन्धरहितत्वाद् बन्धनावरणविमुक्तम्, (शुद्धं) तदविद्यादिदोषेभ्यः सर्वदा पृथग्वर्तमानम्, (अपापविद्धम्) नैव तत्पापयुक्तं पापकारि च कदाचिद्भवति, (कविः) सर्वज्ञः, (मनीषी) यः सर्वेषां मनसामीषी साक्षी ज्ञातास्ति, (परिभूः) सर्वेषामुपरि विराजमानः, (स्वयम्भूः) यो निमित्तोपादानसाधारणकारण-त्रयरहितः, स एव सर्वेषां पिता, नह्यस्य कश्चित् जनकः स्वसामर्थ्येन सहैव सदा वर्तमानोऽस्ति, य एवंभूतः सच्चिदानन्दस्वरूपः परमात्मा (सः) सर्गादौ (शाश्वतीभ्यः) स्वकीयाभ्यः शाश्वतीभ्यो निरन्तराभ्यः (समाभ्यः) प्रजाभ्यो (याथातथ्यतः) यथार्थस्वरूपेण वेदोपदेशेन (अर्थान् व्यदधात्) विधत्तवानर्थाद्यदा यदा सृष्टिं करोति तदा तदा प्रजाभ्यो हितायादिसृष्टौ सर्वविद्यासमन्वितं वेदशास्त्रं स एव भगवानुपदिशति । अत एव नैव वेदानामनित्यत्वं केनापि मन्तव्यम्, तस्य विद्यायाः सर्वदैकरसवर्त्तमानत्वात् ।

भाषार्थ—ऐसे ही परमेश्वर ने अपने और अपने किये वेदों के नित्य और स्वतः प्रमाण होने का उपदेश किया है सो आगे लिखते हैं—(स पर्यगात्) यह मन्त्र ईश्वर और उसके किये वेदों का प्रकाश करता है, कि जो परमेश्वर सर्वव्यापक आदि विशेषणयुक्त है सो सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है, उसकी व्याप्ति से एक परमाणु भी रहित नहीं है । सो ब्रह्म (शुक्रं) सब जगत् का करने वाला और अनन्तविद्यादि बल से युक्त है, (अकायं) जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों के संयोग से रहित है, अर्थात् वह कभी जन्म नहीं लेता, (अव्रणं) जिसमें एक परमाणु भी छिद्र नहीं कर सकता, इसी से वह सर्वथा छेदरहित है, (अस्नाविरं) वह नाड़ियों के बन्धन से अलग है, जैसा वायु और रुधिर नाड़ियों में बंधा रहता है, ऐसा बन्धन परमेश्वर में नहीं होता, (शुद्धं) जो अविद्या अज्ञानादि क्लेश और सब दोषों से पृथक् है, (अपापविद्धम्) सो ईश्वर पापयुक्त वा पाप करने वाला कभी नहीं होता, क्योंकि वह स्वभाव से ही धर्मात्मा है, (कविः) जो सब का जानने वाला है, (मनीषी) जो सब का अन्तर्यामी है, और भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान इन तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जानता है, (परिभूः) जो सब के ऊपर विराजमान हो रहा है, (स्वयम्भूः) जो कभी उत्पन्न नहीं होता और उसका कारण भी कोई नहीं, किन्तु वही सब का कारण, अनादि और अनन्त है । इससे वही सब का माता पिता है, और अपने ही सत्य सामर्थ्य से सदा वर्त्तमान रहता है । इत्यादि लक्षणों से युक्त जो सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर है, (शाश्वतीभ्यः०) उसने सृष्टि की आदि में अपनी प्रजा को, जो कि उसके सामर्थ्य में सदा से वर्तमान है, उसके सब सुखों के लिए (अर्थान् व्यदधात्) सत्य अर्थों का उपदेश किया है । इसी प्रकार जब जब परमेश्वर सृष्टि को रचता है, तब तब प्रजा के हित के लिए सृष्टि की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है, और जब जब सृष्टि का प्रलय होता है तब तब वेद उसके ज्ञान में सदा बने रहते हैं, इससे उनको सदैव नित्य मानना चाहिए ।

यथा शास्त्रप्रमाणेन वेदा नित्याः सन्तीति निश्चयोऽस्ति, तथा युक्त्यापि । तद्यथा—'नासत आत्मलाभो, न सत आत्महानम्, योऽस्ति स भविष्यति' इति न्यायेन वेदानां

नित्यत्वं स्वीकार्य्यम् कुतः ? यस्य मूलं नास्ति नैव तस्य शाखादयः सम्भवितुमर्हन्ति, वन्ध्यापुत्रविवाहदर्शनवत् । पुत्रो भवेच्चेत्तदा वन्ध्यात्वं न सिध्येत् स नास्ति चेत्पुनस्तस्य विवाहदर्शने कथं भवतः। एवमेवात्रापि विचारणीयम् । यदीश्वरे विद्यानन्ता न भवेत् कथमुपदिशेत् ? स नोपदिशेच्चेन्नैव कस्यापि मनुष्यस्य विद्यासम्बन्धो दर्शनं च स्याताम्, निर्मूलस्य प्ररोहाभावात्। न ह्यस्मिन् जगति निर्मूलमुत्पन्नं किञ्चिद् दृश्यते ।

यस्य सर्वेषां मनुष्याणां साक्षादनुभवोऽस्ति सोऽत्र प्रकाश्यते–यस्य प्रत्यक्षोऽनुभवस्तस्यैव संस्कारो, यस्य संस्कारस्तस्यैव स्मरणं ज्ञानं, तेनैव प्रवृत्तिनिवृत्ती भवतो नान्यथेति। तद्यथा–येन संस्कृतभाषा पठ्यते तस्याऽस्या एव संस्कारो भवति, नाऽन्यस्याः । येन देशभाषाऽधीयते तस्या एव संस्कारो भवति, नातोऽन्यस्याः । एवं सृष्ट्यादावीश्वरोपदेशाऽध्यापनाभ्यां विना नैव कस्यापि विद्याया अनुभवः स्यात्, पुनः कथं संस्कारस्तेन विना कुतः स्मरणम्? न च स्मरणेन विना विद्याया लेशोऽपि कस्यचिद् भवितुमर्हति ।

भाषार्थ–जैसे शास्त्रों के प्रमाणों से वेद नित्य हैं, वैसे ही युक्ति से भी उनका नित्यपन सिद्ध होता है, क्योंकि 'असत् से सत् का होना अर्थात् अभाव से भाव का होना कभी नहीं हो सकता, तथा सत् का अभाव भी नहीं हो सकता । जो सत्य है उसी से आगे प्रवृत्ति भी हो सकती है, और जो वस्तु ही नहीं है उससे दूसरी वस्तु किसी प्रकार से नहीं हो सकती ।' इस न्याय से भी वेदों को नित्य ही मानना ठीक है । क्योंकि जिसका मूल नहीं होता है, उसकी डाली, पत्र, पुष्प और फल आदि भी कभी नहीं हो सकते। जैसे कोई कहे कि वन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने देखा, यह उसकी बात असम्भव है, क्योंकि जो उसके पुत्र होता तो वह वन्ध्या ही क्यों होती, और जब पुत्र ही नहीं है तो उसका विवाह और दर्शन कैसे हो सकते हैं ? वैसे ही जब ईश्वर में अनन्तविद्या है, तभी मनुष्यों को विद्या का उपदेश भी किया है । और जो ईश्वर में अनन्तविद्या न होती तो वह उपदेश कैसे कर सकता, और वह जगत् को भी कैसे रच सकता ? जो मनुष्यों को ईश्वर अपनी विद्या का उपदेश न करता तो किसी मनुष्य को विद्या, जो यथार्थ ज्ञान है, सो कभी नहीं होता, क्योंकि इस जगत् में निर्मूल का होना वा बढ़ना सर्वथा असम्भव है । इससे यह जानना चाहिए कि परमेश्वर से वेदविद्या मूल को प्राप्त होके मनुष्यों में विद्यारूप वृक्ष विस्तृत हुआ है ।

इस में और भी युक्ति है कि जिसका सब मनुष्यों को अनुभव और प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, उसी का दृष्टान्त देते हैं–देखो कि जिसका साक्षात् अनुभव होता है उसी का ज्ञान में संस्कार होता है, संस्कार से स्मरण, स्मरण से इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति होती है, अन्यथा नहीं । जो संस्कृत भाषा को पढ़ता है उसके मन में उसी का संस्कार होता है, अन्य भाषा का नहीं, और जो किसी देशभाषा को पढ़ता है उस को देशभाषा का संस्कार होता है, अन्य का नहीं । इसी प्रकार जो वेदों का उपदेश ईश्वर न करता तो किसी मनुष्य को विद्या का संस्कार नहीं होता, जब विद्या का संस्कार न होता तो उसका स्मरण भी नहीं होता, स्मरण से विना किसी मनुष्य को विद्या का लेश भी न हो सकता । इस युक्ति से क्या जाना जाता है कि ईश्वर के उपदेश से वेदों को सुन पढ़ के और विचार के ही मनुष्यों को विद्या का संस्कार आज-पर्यन्त होता चला आया है, अन्यथा कभी नहीं हो सकता ।

किं च भोः ! मनुष्याणां स्वाभाविकी या प्रवृत्तिर्भवति, तत्र सुखदुःखानुभवश्च, तयोत्तरोत्तरकाले

क्रमानुक्रमाद्विद्यावृद्धिर्भविष्यत्येव, पुनः किमर्थमीश्वराद्वेदोत्पत्तेः स्वीकार इति ?

एवं प्राप्ते ब्रूमः—एतद्वेदोत्पत्तिप्रकरणे परिहृतम्, तत्रैष निर्णयः—यथा नेदानीमन्येभ्यः पठनेन विना कश्चिदपि विद्वान् भवति, तस्य ज्ञानोन्नतिश्च, तथा नैवेश्वरोपदेशागमेन विना कस्यापि विद्याज्ञानोन्नतिर्भवेत्' अशिक्षितबालकवनस्थवत् । यथोपदेशमन्तरा न बालकानां वनस्थानां च विद्यामनुष्यभाषाविज्ञानेऽपि भवतः, पुनर्विद्योत्पत्तेस्तु का कथा ? तस्मादीश्वरादेव या वेदविद्याऽऽगता सा नित्यैवास्ति, तस्य सत्यगुणवत्त्वात् ।

यन्नित्यं वस्तु वर्त्तते तस्य नामगुणकर्माण्यपि नित्यानि भवन्ति, तदाधारस्य नित्यत्वात्। नैवाधिष्ठानमन्तरा नामगुणकर्मादयो गुणाः स्थितिं लभन्ते, तेषां पराश्रितत्वात् । यन्नित्यं नास्ति न तस्यैतान्यपि नित्यानि भवन्ति । नित्यं चोत्पत्तिविनाशाभ्यामितरद्भवितुमर्हति । उत्पत्तिर्हि पृथग्भूतानां द्रव्याणां या संयोगविशेषाद् भवति । तेषामुत्पन्नानां कार्य्यद्रव्याणां सति वियोगे विनाशश्च सङ्घाताभावात् । अदर्शनं च विनाशः । ईश्वरस्यैकरसत्वान्नैव तस्य संयोगवियोगाभ्यां संस्पर्शोऽपि भवति । अत्र कणादमुनिकृतं सूत्रं प्रमाणमस्ति—

'सदकारणवन्नित्यम् ॥१॥' वैशेषिके अ० ४। सू० १॥

अस्यायमर्थः—यत्कार्य्यं कारणादुत्पद्य विद्यमानं भवति, तदनित्यमुच्यते, तस्य प्रागुत्पत्तेरभावात्। यत्तु कस्यापि कार्य्यं नैव भवति किन्तु सदैव कारणरूपमेव तिष्ठति, तन्नित्यं कथ्यते ।

यद्यत्संयोगजन्यं तत्तत्कर्त्रपेक्षं भवति । कर्त्तापि संयोगजन्यश्चेत्तर्हि तस्याप्यन्योऽन्यः कर्त्तास्तीत्यागच्छेत् । एवं पुनः पुनः प्रसङ्गादनवस्थापत्तिः । यच्च संयोगेन प्रादुर्भूतं, नैव तस्य प्रकृतिपरमाण्वादीनां संयोगकरणे सामर्थ्यं भवितुमर्हति, तस्मात्तेषां सूक्ष्मत्वात् । यद्यस्मात्सूक्ष्मं तत्तस्यात्मा भवति, स्थूले सूक्ष्मस्य प्रवेशार्हत्वात्, अयोऽग्निवत् । यथा सूक्ष्मत्वादग्निः कठिनं स्थूलमयः प्रविश्य तस्यावयवानां पृथग्भावं करोति, तथा जलमपि पृथिव्याः सूक्ष्मत्वात्तत्कणान् प्रविश्य संयुक्तमेकं पिण्डं करोति, छिनत्ति च । तथा परमेश्वरः संयोगवियोगाभ्यां पृथग्भूतो विभुरस्त्यतो नियमेन रचनं विनाशं च कर्त्तुमर्हति, न चान्यथा । यथा संयोगवियोगान्तर्गतत्वान्नास्मदादीनां प्रकृतिपरमाण्वादीनां संयोगवियोगकरणे सामर्थ्यमस्ति । तथेश्वरेऽपि भवेत् ।

अन्यच्च—यतः संयोगवियोगारम्भो भवति स तस्मात् पृथग्भूतोऽस्ति, तस्य संयोगवियोगारम्भस्यादिकारणत्वात् । आदिकारणस्याभावात्संयोगवियोगारम्भस्यानुत्पत्तेश्च । एवं भूतस्य सदा निर्विकारस्वरूपस्याजस्यानादेर्नित्यस्य सत्यसामर्थ्यस्येश्वरस्य सकाशाद्वेदानां प्रादुर्भावात्तस्य ज्ञाने सदैव वर्त्तमानत्वात्सत्यार्थवत्त्वं नित्यत्वं चैतेषामस्तीति सिद्धम् ।

इति वेदानां नित्यत्वविचारः ।

भाषार्थ—प्र०—मनुष्यों की स्वभाव से जो चेष्टा है, उसमें सुख और दुःख का अनुभव भी होता है । उससे उत्तर उत्तर काल में क्रमानुसार से विद्या की वृद्धि भी अवश्य होगी । तब वेदों को भी मनुष्य लोग रच लेंगे, फिर ईश्वर ने वेद रचे । ऐसा क्यों मानना ?

उ०—इसका समाधान वेदोत्पत्ति के प्रकरण में कर दिया है । वहां यही निर्णय किया है कि जैसे इस समय में अन्य विद्वानों से पढ़े विना कोई भी विद्यावान् नहीं होता और इसी के विना किसी पुरुष में ज्ञान की वृद्धि भी देखने में नहीं आती, वैसे ही सृष्टि के आरम्भ में ईश्वरोपदेश की प्राप्ति के विना किसी मनुष्य की विद्या और ज्ञान की बढ़ती कभी नहीं हो सकती । इसमें अशिक्षित

बालक और वनवासियों का दृष्टान्त दिया था, कि जैसे उस बालक और वन में रहने वाले मनुष्य को यथावत् विद्या का ज्ञान नहीं होता, तथा अच्छी प्रकार उपदेश के विना उनको लोक-व्यवहार का भी ज्ञान नहीं होता, फिर विद्या की प्राप्ति तो अत्यन्त कठिन है । इससे क्या जानना चाहिए कि परमेश्वर के उपदेश वेदविद्या आने के पश्चात् ही मनुष्यों को विद्या और ज्ञान की उन्नति करनी भी सहज हुई है, क्योंकि उसके सभी गुण सत्य हैं । इससे उसकी विद्या जो वेद है वह भी नित्य ही है ।

जो नित्य वस्तु है उसके नाम, गुण और कर्म भी नित्य ही होते हैं, क्योंकि उनका आधार नित्य है । और विना आधार से नाम गुण और कर्मादि स्थिर नहीं हो सकते, क्योंकि वे द्रव्यों के आश्रय सदा रहते हैं । जो अनित्य वस्तु है, उसके नाम गुण और कर्म भी अनित्य होते हैं । सो नित्य किसको कहना? जो उत्पत्ति और विनाश से पृथक् है । तथा उत्पत्ति क्या कहाती है ? कि जो अनेक द्रव्यों के संयोग विशेष से स्थूल पदार्थ का उत्पन्न होना । और जब वे पृथक् पृथक् होके उन द्रव्यों के वियोग से जो कारण में उनकी परमाणुरूप अवस्था होती है, उसको विनाश कहते हैं । और जो द्रव्य संयोग से स्थूल होते हैं वे चक्षु आदि इन्द्रियों से देखने में आते हैं । फिर उन स्थूल द्रव्यों के परमाणुओं का जब वियोग हो जाता है, तब सूक्ष्म के होने से वे द्रव्य देख नहीं पड़ते, इसका नाम नाश है । क्योंकि अदर्शन को ही 'नाश' कहते हैं । जो द्रव्य संयोग और वियोग से उत्पन्न और नष्ट होता है, उसी को कार्य्य और अनित्य कहते हैं, और जो संयोग वियोग से अलग है उसकी न कभी उत्पत्ति और न कभी नाश होता है । इस प्रकार का पदार्थ एक परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण है, क्योंकि वह सदा अखण्ड एकरस ही बना रहता है । इसी से उसको 'नित्य' कहते हैं । इसमें कणादमुनि के सूत्र का भी प्रमाण है—

(सत्कार०) जो किसी का कार्य है कि कारण से उत्पन्न होके विद्यमान होता है उसको अनित्य कहते हैं । जैसे मिट्टी से घड़ा होके वह नष्ट भी हो जाता है । इसी प्रकार परमेश्वर के सामर्थ्य कारण से सब जगत् उत्पन्न हो के विद्यमान होता है, फिर प्रलय में स्थूलाकार नहीं रहता किन्तु वह कारणरूप तो सदा ही बना रहता है । इससे क्या आया कि जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो अर्थात् स्वयं कारणरूप ही हो, उसको 'नित्य' कहते हैं ।

क्योंकि जो जो संयोग से उत्पन्न होता है सो सो बनाने वाले की अपेक्षा अवश्य रखता है । जैसे कर्म, नियम और कार्य ये सब कर्त्ता, नियन्ता और कारण को ही सदा जनाते हैं और जो कोई ऐसा कहे कि कर्त्ता को भी किसी ने बनाया होगा तो उससे पूछना चाहिए उस कर्त्ता के कर्त्ता को किसने बनाया है ? इसी प्रकार यह अनवस्था प्रसङ्ग अर्थात् मर्यादा रहित होता है । जिस की मर्यादा नहीं है, वह व्यवस्था के योग्य नहीं ठहर सकता । और जो संयोग से उत्पन्न होता है, वह प्रकृति और परमाणु आदि के संयोग करने में समर्थ ही नहीं हो सकता । इससे क्या आया कि जो जिससे सूक्ष्म होता है वही उसका आत्मा होता है, अर्थात् स्थूल में सूक्ष्म व्यापक होता है । जैसे लोहे में अग्नि प्रविष्ट होके उसके सब अवयवों में व्याप्त होता है, और जैसे जल पृथिवी में प्रविष्ट होके उसके कणों के संयोग से पिण्ड करने में हेतु होता है तथा उसका छेदन भी करता है, वैसे ही परमेश्वर सब संयोग और वियोग से पृथक्, सब में व्यापक, प्रकृति और परमाणु आदि से भी अत्यन्त सूक्ष्म और चेतन है, इसी कारण से प्रकृति और परमाणु आदि द्रव्यों के संयोग करके जगत् को रच सकता है। जो ईश्वर उनसे स्थूल होता तो उनका ग्रहण और रचन कभी नहीं कर सकता, क्योंकि जो स्थूल

पदार्थ होते हैं वे सूक्ष्म पदार्थों के नियम करने में समर्थ नहीं होते। जैसे हम लोग प्रकृति और परमाणु आदि के संयोग और वियोग करने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि जो संयोग वियोग के भीतर है, वह उसके संयोग वियोग करने में समर्थ नहीं हो सकता।

तथा जिस वस्तु से संयोग वियोग का आरम्भ होता है वह वस्तु संयोग और वियोग से अलग ही होता है, क्योंकि वह संयोग और वियोग के आरम्भ के नियमों का कर्त्ता और आदिकारण होता है, तथा आदिकारण के अभाव से संयोग और वियोग का होना ही असम्भव है। इससे क्या जानना चाहिए कि जो सदा निर्विकारस्वरूप, अज, अनादि, नित्य, सत्यसामर्थ्य से युक्त और अनन्तविद्यावाला ईश्वर है, उसकी विद्या से वेदों के प्रकट होने और उसके ज्ञान में वेदों के सदैव वर्त्तमान रहने से वेदों को सत्यार्थयुक्त और नित्य सब मनुष्यों को मानना योग्य है। यह संक्षेप से वेदों के नित्य होने का विचार किया।

इति वेदानां नित्यत्वविचारः ॥